ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 5 अंक 20 अक्टूबर-दिसम्बर 2019

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

(लघुकथा विशेषांक)

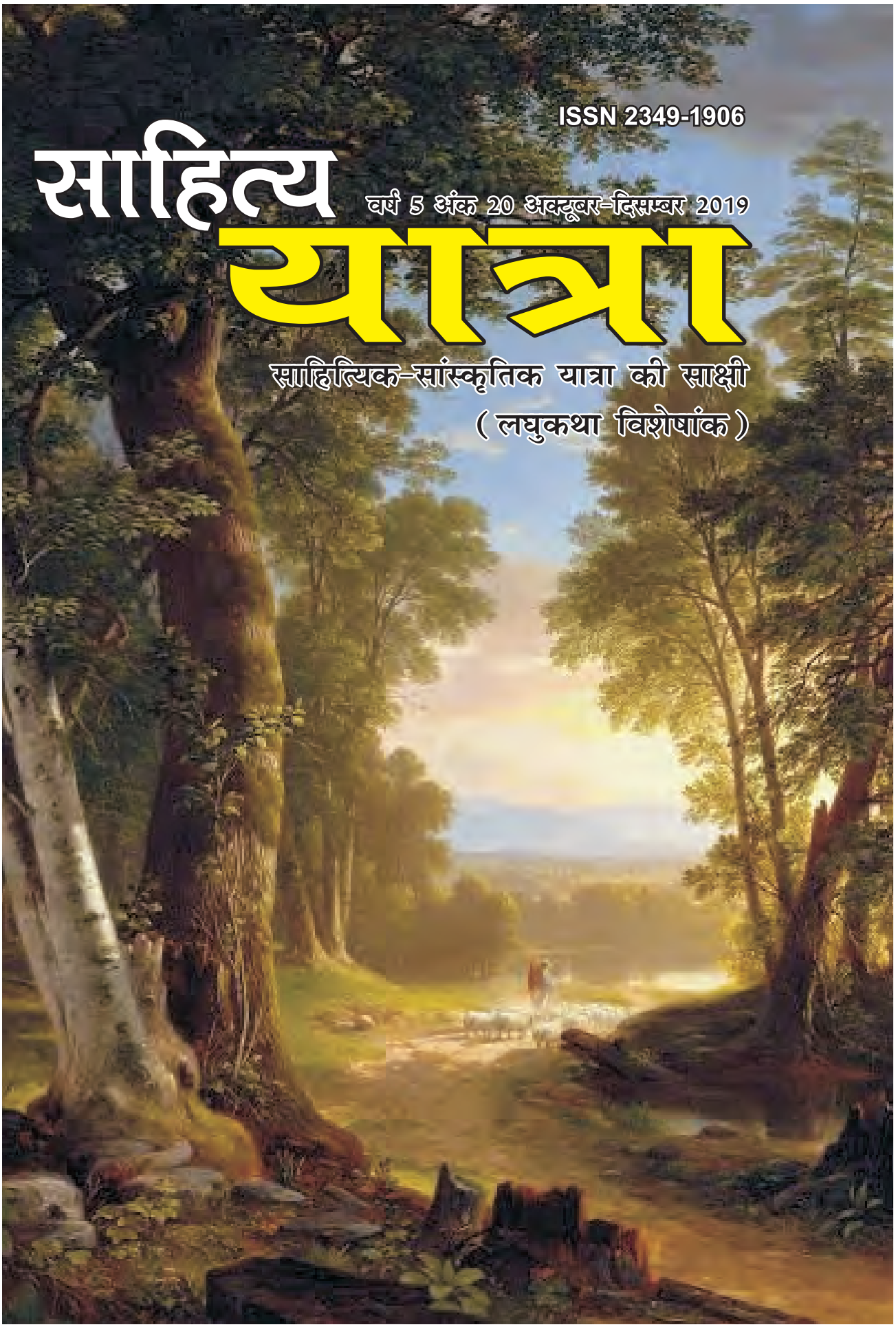

गंगा प्रसाद विमल

3 जुलाई 1939 - 23 दिसम्बर 2019

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि, लेखक, कोशकार, समीक्षक आदरणीय गंगा प्रसाद विमल जी नहीं रहे। अपनी पुत्री और नाती के साथ श्रीलंका में एक सड़क दुर्घटना में उनका देहावसान हो गया। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न तथा विशाल व्यक्तित्व के धनी थे। उनका जन्म 3 जुलाई 1939, उत्तरकाशी (उत्तराखंड) में हुआ था।

वे अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित थे। विमल जी सहज व्यक्ति थे। वे साहित्य की बहुमुखी विधा से संपन्न रचनाकार थे। उनके सात कविता संग्रह–'बोधि–वृक्ष', 'नो सूनर', 'इतना कुछ', 'सन्नाटे से मुठभेड़', 'मैं वहाँ हूँ', 'अलिखित–अदिखत', 'कुछ तो है', प्रकाशित हो चुके हैं। कोई शुरुआत, अतीत में कुछ, इधर–उधर, बाहर न भीतर, खोई हुई थाती, आदि प्रमुख कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। उनके चार उपन्यास– 'अपने से अलग, कहीं कुछ और मरीचिका, मृगांतक' लोकप्रिय हुए। 'आज नहीं कल' शीर्षक से एक नाटक और आलोचना पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

साहित्य यात्रा परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-5 अंक-20 अक्टूबर-दिसम्बर, 2019

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

आवरण चित्र

कृष्ण नन्दन झा

प्राध्यापक शहीद भगत सिंह कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्व अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

आलेख

लघुकथा का शिल्प 11
योगराज प्रभाकर

मूल्यांकन

आधुनिक हिन्दी लघुकथा : आधार और विश्लेषण 21
डॉ. सतीशराज पुष्करणा

आलेख

हिन्दी लघुकथा का उद्‌भव और विकास 24
विभा रानी श्रीवास्तव

लघुकथा का निबंध 29
जयप्रकाश मानस

हिन्दी-लघुकथाओं में बुजुर्ग पात्रों का चरित्र-चित्रण 35
डॉ. ध्रुब कुमार

हिन्दी लघुकथा में 'पिता' पात्र का चरित्र-चित्रण 40
कल्पना भट्‌ट

लघुकथा : साहित्य की विशिष्ट विधा 54
निरूपमा राय

हिन्दी लघुकथाओं में समाज और संस्कृति 57
खेमकरण 'सुमन'

साक्षात्कार

हिन्दी लघुकथा की हीरों का कीमती हार 69
डॉ. लता अग्रवाल

'मूल्य' आम सामाजिक की धमनियों में दौड़ रहे होते हैं- 81
बलराम अग्रवाल

लघुकथा

हे! प्रभु 86
डॉ. रामदरश मिश्र

डोमिन काकी/आतंकवाद/बयान 89
चित्रा मुद्‌गल

गुड़ चाउर 93
उषा किरण खान

बत्ती गुल/आखिरी कलाम/काली रेत 94
बलराम अग्रवाल
जीवित मृत 98
महेश दर्पण
गाली 103
रामयतन यादव
टूटता परिवार : बिखरता मन 104
नृपेन्द्रनाथ गुप्त
बड़ा रावण 106
डॉ. लता अग्रवाल
रक्षक/राह 109
प्रो. कलानाथ मिश्र
आँसू 111
निरूपमा राय
बुढ़ा किस काम का?/बरसता पानी/अब बस... 112
सारिका कालरा
असली निबंध/इतिहास/खेती 115
डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज
माँ की छवि 118
डॉ. करूणा कमल
माँ 120
रामबाबू नीरव
रक्षक/एहसान फरामेश 122
रामबाबू नीरव
गारंटी/आग 125
डॉ. रामनिवास 'मानव'

दस्तावेज

पानी की जाति 126
विष्णु प्रभाकर

पुस्तक समीक्षा

तैरती हैं पत्तियाँ : संवादों की छैनी से तराशी लघुकथाएँ 127
डॉ. पुरूषोत्तम दुबे

श्राद्धंजलि

डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह का साहित्यिक अवदान 130
अमित कुमार मिश्र

सम्पादकीय

देखन में छोटन लगे घाव करे गंभीर

कथा के सम्पूर्ण स्वरूप को लघुता में समाहित कर देना ही लघु कथा है। आकार में छोटा होते हुए भी लघुकथा में कहानी की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ और प्रभाव समाहित होती हैं। आकार की लघुता, चुस्त शैली, द्रुत प्रवाह और सांकेतिकता आदि गुणों के कारण लघुकथा एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने साहित्यालोचन में यह मान्यता व्यक्त की है कि 'कहानी उपन्यास की ही संतान है, जो अब अपने पिता से पृथक है। यह बालिका जो गल्प कहलाती है, उपन्यास की ही औरस जात है।..... इन दोनों में केवल आकार का भेद ही नहीं माना जाता वरन् इनके रूप-रंग भी भिन्न हो गए हैं।'' (साहित्यालोचन श्यामसुन्दर दास पृष्ठ-11 संस्करण-1981) इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि लघु-कथा आकार में लघु होते हुए भी कहानी के सम्पूर्ण संस्कार से सम्पृत है। हलाँकि इसमें भाव प्रवाह का बहुत अवसर नहीं होता किन्तु जीवन विसंगतियों को प्रभावी तरीके से लघुता में पिरो देना ही इसके शिल्प की विशेषता है। लेकिन इसके लिए लघुकथा में शब्दों को उनकी भाव प्रवणता के अनुरूप प्रयोग करने की दक्षता भी रचनाकर में आवश्यक है ताकि वह कथा प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हो। यह गागर में सागर भरने जैसा है। यही इसकी शक्ति है।

21वीं सदी लघुकथा के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के स्वरूप में समय के साथ परिवर्तन होना स्वाभाविक है। विष्णु प्रभाकर ने लघुकथा का विवेचन करते हुए लिखा है कि 'जो गतिशील है वह एक समय अपने रूप-रंग में नितांत भिन्न होकर भी अतीत से अलग नहीं होता है, बल्कि उसी का विकसित होता हुआ रूप है।'' परिवर्तन की इसी प्रवृत्ति ने लघुकथा को जन्म दिया। साहित्य का उद्देश्य मनुष्य की चेतना को जगाना है। जब पाठक लघुता में जीवन के उस विशेष प्रभाव को ढूंढ पाने में संतोष अनुभव करता है तभी लघुकथा की सार्थकता सिद्ध हो पाती है। लघुकथा के संबंध में डॉ. सतीश दूबे ने एक साक्षात्कार में कहा कि- ''लघुकथा की आवश्यकता क्षण में छिपे जीवन के विराट प्रभाव की अभिव्यक्ति के लिए है।'' लघुकथा के लिए यह कहना सर्वथा उचित होगा कि- **'देखन में छोटन लगे घाव करे गंभीर'।**

विष्णु प्रभाकर ने 1938-1987 तक अनेक लघु कथाएँ लिखीं जो समय- समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपीं। इस सम्बंध में बुद्विनाथ झा 'कैरव' ने अपनी पुस्तक 'साहित्य-साधना' में लिखा है कि- 'लघुकथा अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' शब्द का अनुवाद है। विष्णु प्रभाकर लघुकथा को पश्चिम से आयातित नहीं मानते। वे इसे बीसवीं सदी के आठवें दशक की देन भी नहीं मानते हैं। वे भी कुछ अन्य आलोचकों की तरह इसका सूत्र पंचतंत्र और बोध कथाओं में ढूंढना पसंद करते थे। वस्तुत: आधुनिक युग की जीवन की गति तेज होती हुई क्रमश: तीव्रतर होती गई है। संचार माध्यम में हुए क्रांति के कारण पाठकों के पास समय का अभाव है। इसीलिए उपन्यास से अधिक कहानी पाठकों में प्रिय होने लगी। कहानी की संक्षिप्तता लघुकथा का स्वरूप ग्रहण करती गयी। अत: लघुकथाओं की लोकप्रियता असंदिग्ध है। आकार की संक्षिप्ता के कारण लघुकथा में भावात्मक विस्तार कम रहता है, किन्तु प्रभावोत्पादकता बनी रहती है। यह सूत्र रूप में जीवन की व्याख्या करती है। लघुकथाओं में

मानव जीवन के बिखरे असंख्य मार्मिक चित्र का दर्शन हमें मिल सकते हैं।

'कैरव' जी की लघुकथा के सम्बन्ध में दी गई इस परिभाषा को लक्ष्मी नारायण लाल ने भी साहित्य कोष (भाग-1) में उद्धृत किया है। बाद में लघुकथा की अनेक परीभाषाएँ दी गई। लघुकथा के विकास में बिहार सहित कई प्रांतो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लघुकथा के सम्बन्ध में सतीषराज पुस्करना ने कहा है कि- 'समाज में व्याप्त विषसंगतियों में से किसी भी विसंगति को लेकर सांकेतिक भाषा शैली में चलने वाला सारर्भित, प्रभावशाली एवं सशक्त कथ्य जब झकझोड़ / छटपटा देने वाली लघु आकारी कथात्मक रचना का आकार धारण कर लेता है तो लघु कथा कहलाता है।'

इस प्रकार अनेक आलोचकों, लघुकथाकारों ने लघुकथा को अपने-अपने रूप से व्याख्यायित, परिभाषित करने की चेष्टा की है। लघुकथा के विकास के सम्बन्ध में अनेक तथ्य सामने आते हैं। लघुकथा रचनाकारों ने 1874 ई0 में 'बिहार बन्धु' में प्रकाशित उपदेशात्मक कथा, जो आकार में छोटे थे, उन्हें लघु-कथा माना। भारतेन्दु, माखन लाल चतुर्वेदी, पद्युमलाल, पुन्नालाल बक्शी, आदि अनके तदयुगीन रचनाकारों के द्वारा रचित लघु-कथाओं को आरम्भिक लघु-कथा माना गया है। 1875 ईसवी में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'परिहासिनी' नामक में जो छोटी-छोटी कथाएं हैं, उन कथाओं को लघुकथा की शुरुआत मानते हैं। खलील जिब्रान की पैनी कथाओं का उल्लेख इस संदर्भ में किया जाता है।

कुछ लोगों का मानना है कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने छोटी कथाओं की शुरुआत की। कहा जाता है कि सन् 1929 में बापू के देश भ्रमण में चंदा एकत्र करते हुए लोगों से जो वार्तालाप हुआ करता था उस से प्रेरित होकर उन्होंने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने का प्रयास किया। यहाँ उनकी एक कथा का दृष्टांत दे रहा हूँ। इसका शीर्षक है 'सेठ जी' -

> ''महात्मा गाँधी आ रहे हैं,
>
> उनकी 'पर्स' के लिए कुछ आप भी दीजिए सेठ जी!
>
> बाबू जी, आपके पीछे हर समय खुफिया लगी रहती है। कोई हमारी रिपोर्ट कर देगा, इसलिए हम इस झगड़े में नहीं पड़ते'।
>
> 'मैं रात दिन चँदा माँग रहा हूँ, जब मुझे ही पुलिस न पी गई तो रिपोर्ट आपका क्या कर लेगी?'
>
> जरा सोच कर हाथ जोड़ते हुए-से बोले,- 'अजी, आप की बात और है। हम कलेक्टर साहब से डरते हैं। आपकी बात और है, आपसे तो उल्टा कलेक्टर ही डरता है।
>
> प्रसन्नता से मैंने कहा, 'तो आप ही डरने वाले में क्यों रहते हैं? कांग्रेस में नाम लिखा लीजिए, फिर कलेक्टर आपसे भी डरने लगेगा।
>
> सेठ जी ने दाँत निकालकर जो मुद्रा बनाई उसकी ध्वनि थी, हे...हे...हे।''

इन कथाओं की अज्ञेय जी और प्रेमचंद आदि ने बहुत सराहना की। इस संबंध में प्रेमचंद का यह कथन उल्लेखनीय है- 'यह एक नई कलम है। गद्य काव्य और कहानी के बीच एक नई पौधा जिसमें गद्य काव्य का चित्र और कहानी का चरित्र है।' भाई बलराम ने अपने विस्तृत लेख

'हिंदी लघु कहानी – एक पुनर्मूल्यांकन' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ''हम माखन लाल चतुर्वेदी की 'बिल्ली' और 'बुखार' को हिंदी की आधुनिक लघु कहानी मानते हैं। यहाँ मेरा उद्देश्य लघुकथा के इतिहास में गोता लगाना नहीं है। आज इस विषय पर अनेक शोध हो रहे हैं।''

हिन्दी के अनेक मूर्धन्य रचनाकारों ने लघु कहानियाँ लिखीं। यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, उपेन्द्रनाथ अश्क, पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र, रामेश्वर नाथ तिवारी, मोहन लाल महतो वियोगी, रामबृक्ष बेनीपुरी, कामता प्रसाद सिंह, केदार नाथ मिश्र प्रभात, रामदरश मिश्र, आदि अनेक विशिष्ट रचनाकारों की रचनाओं को लघुकथा का आधार/आरम्भ माना है। 1980 के दशक् में बलराम, चित्रा मुद्गल, सतीश राठी, सहित अनके रचनाकार प्रकाश में आए। बिहार में सतीशराज पुष्करना, मिथलेश कुमारी मिश्र, रामयतन यादव आदि ने अपना सक्रिय योगदान दिया है। सबका नामोल्लेख यहाँ संभव नहीं है। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद की पत्रिका के स्वर्ण जयन्ती अंक में 'हिन्दी लघुकथा और बिहार' शीर्षक से एक लेख 2010 में प्रकाशित है।

विष्णु प्रभाकर ने सन 1939 में लघुकथा का लेखन प्रारंभ किया था। उनकी पहली लघु कथा 'सार्थकता', 'हंस' के जनवरी 1939 के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसमें एक फूल की व्यथा को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। विष्णु प्रभाकर जी ने अनेक लघुकथाएँ लिखी। मुझे विष्णु प्रभाकर जी की लघुकथा ने बहुत प्रभावित किया। तब से लघुकथा से मेरा जुड़ाव बढता गया। इस अंक में विष्णुप्रभाकर जी की वह लघुकथा 'फर्क' शामिल कर रहा हूँ।'–

> उस दिन उसके मन में इच्छा हुई कि भारत और पाक के बीच की सीमा रेखा को देखा जाए। जो की एक देश था, वह अब दो होकर कैसा लगता है। दो थे, तो दोनों एक दूसरे के प्रति शंकालु थे। दोनों ओर पहरा था। बीच में कुछ भूमि होती है, जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता। दोनों उस पर खड़े हो सकते हैं। वह वहीं खड़ा था, लेकिन अकेला नहीं था, पत्नी थी और थे अठारह सशस्त्र सैनिक और उनका कमांडर भी। दूसरे देश के सैनिकों के सामने वे उसे अकेला कैसे छोड़ सकते थे। इतना ही नहीं, कमांडर ने उसके कान में कहा, 'उधर के सैनिक आपको चाय के लिए बुला सकते हैं, जाइएगा नहीं। पता नहीं क्या हो जाए? आपकी पत्नी साथ में है और फिर कल हमने उनके छह तस्कर मार डाले थे।'
>
> उसने उत्तर दिया, 'जी नहीं, मैं उधर कैसे जा सकता हूं?'
>
> और मन नही मन कहा, 'मुझे आप इतना मूर्ख कैसे समझते हैं? मैं इंसान हूँ, अपने पराये में भेद करना जानता मैं हूँ। इतना विवेक मुझमें है।'
>
> वह यह सब सोच ही रहा था कि सचमुच उधर के सैनिक वहां आ पहुंचे। रोबीले पठान थे। बड़े तपाक से हाथ मिलाया। उस दिन ईद थी। उसने उन्हें मुबारकबाद कहा। बड़ी गर्मजोशी के साथ एक बार फिर हाथ मिलाकर वे बोले, 'उधर तशरीफ लाइए। हम लोगों के साथ एक प्याला चाय पीजिए।'
>
> इसका उत्तर उसके पास तैयार था। अत्यंत विनम्रता से मुस्कराकर उसने कहा, 'बहुत बहुत शुक्रिया। बड़ी खुशी होती आपके साथ बैठकर, लेकिन मुझे आज ही वापस लौटना है और वक्त बहुत कम है। आज तो माफी चाहता हूँ।'
>
> इसी प्रकार शिष्टाचार की कुछ और बातें हुईं कि पाकिस्तान की ओर से कुलाँचे भरता

हुआ बकरियों का एक दल उनके पास से गुजरा और भारत की सीमा में दाखिल हो गया। एक साथ सबने उनकी ओर देखा। एक क्षण बाद उसने पूछा, 'ये आपकी हैं?'

उनमें से एक सैनिक ने गहरी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया, 'जी हाँ, जनाब, हमारी हैं। जानवर हैं, फर्क करना नहीं जानते।'

आज आपके सामने लघुकथा पर केन्द्रित 'साहित्य यात्रा' का यह अंक प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता हो रही है। विगत कई माह में जब भी पुष्करना जी, रामयतन जी, ध्रुव कुमार जी से मुलाकात होती थी तो लघु-कथा पर आधारित 'साहित्य-यात्रा' का एक विशेष अंक प्रकाशित करने की योजना बनती थी। किन्तु कतिपय कारणों से लघुकथा के इस अंक के प्रकाशन में विलम्ब होता रहा। ध्रुव जी जैसे मित्रों के सहयोग से अन्ततः लघु कथा पर आधारित यह अंक महत्वपूर्ण लेख, निबंध के साथ ही कुछ रचनाकारों की मौलिक लघुकथाओं के संग आपके समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

इस अंक में जिन प्रतिष्ठित रचनाकारों ने अपना रचनात्मक सहयोग दिया है उनके प्रति मैं हार्दिक आभार निवेदित करता हूँ।

इस बीच दो-दो दुःखद घटनाओं का सामना करना पड़ा। आदरणीय डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह का विगत 10 अक्टूबर को देहावसान हो गया। वे बिहार में पुस्तकालय आंदोलन के प्रणेता थे। देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी तथा अंग्रेजी में उनके अनेक साहित्यिक तथा पुस्तकालय विज्ञान के सम्बन्ध में उनके अनेक निबंध प्रकाशित हो चुके थे। उन्होंने लगभग दो दर्जन महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। वे 'साहित्य यात्रा' के आरंभ से ही परामर्शी थे। साहित्य यात्रा की सफलता के लिए उनके मूल्यवान सुझावों और सहयोग के लिए साहित्य यात्रा परिवार सदैव उनका ऋणी रहेगा। इस अंक में उनपर एक आलेख भी हम प्रकाशित कर रहे हैं।

साहित्य यात्रा परिवार उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

संपादकीय लिखते-लिखते ही एक दूसरी दुःखद सूचना मिली कि आदरणीय गंगा प्रसाद विमल जी का अपनी पुत्री और नाती के साथ श्रीलंका की एक सड़क दुर्घटना में देहावसान हो गया। साहित्य जगत में विमल जी को कौन नहीं जानता था। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न, तथा विशाल व्यक्तित्व के धनी थे। सबसे बड़प्पन की बात यह थी कि वे अत्यंत विनम्र व्यक्ति थे। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित रचनाकार थे। पत्रिका के सम्मानित लेखक भी थे। 'साहित्य यात्रा' परिवार उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

हर्ष और विषाद तो जीवन के दायें बाएं चलने वाले सहचर हैं। 2019 जाते जाते एक हर्षीत करने वाला संदेश दे गया। जिससे हम सभी गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं। हम सबों की बहुत अपनी, बिहार साहित्य जगत की अभिभावीका और देश की शीर्षस्थ कथा लेखिका डॉ. उषा किरण खान को प्रतिष्ठित 'भारत भारती सम्मान' से अलंकृत किया गया। साहित्य यात्रा परिवार की ओर से उन्हें बधाई।

वर्ष 2019 का यह अंतिम माह है। 2020 का आगमन असीम संभावनाओं के साथ हो देश में सुख शांति हो यही कामना है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः'

आशा है सुधी पाठकों, विद्वान आलोचकों का स्नेह पूर्ववत मिलता रहेगा।

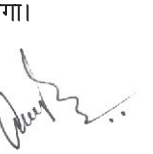

कलानाथ मिश्र

लघुकथा का शिल्प

योगराज प्रभाकर

लघुकथा एक बेहद नाजुक सी विधा है। एक भी अतिरिक्त वाक्य या शब्द इसकी सुंदरता पर कुठाराघात कर सकता है । उसी तरह ही किसी एक किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द की कमी इसे विकलांग भी बना सकती है। अतः लघुकथा में केवल वही कहा जाता है, जितने की आवश्यक होती है। दरअसल लघुकथा किसी बहुत बड़े परिदृश्य में से एक विशेष क्षण को चुरा लेने का नाम है। लघुकथा को अक्सर एक आसान विधा मान लेने की गलती कर ली जाती है, जबकि वास्तविकता बिलकुल इसके विपरीत है। लघुकथा लिखना गद्य साहित्य की किसी भी विधा में लिखने से थोड़ा मुश्किल ही होता है।

लघुकथा शब्द का निर्माण लघु और कथा से मिलकर हुआ है। अर्थात लघुकथा गद्य की एक ऐसी विधा है जो आकार में 'लघु' है और उसमे 'कथा' तत्व विद्यमान है। अर्थात लघुता ही इसकी मुख्य पहचान है। जिस प्रकार उपन्यास खुली आँखों से देखी गई घटनाओं का, परिस्थितियों का संग्रह होता है, उसी प्रकार कहानी दूरबीनी दृष्टि से देखी गयी किसी घटना या कई घटनाओं का वर्णन होती है। इसके विपरीत लघुकथा के लिए माइक्रोस्कोपिक दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। इस क्रम में किसी घटना या किसी परिस्थिति के एक विशेष और महीन से विलक्षण पल को शिल्प तथा कथ्य के लेंसों से कई गुना बड़ा कर एक उभार दिया जाता है। किसी बहुत बड़े घटनाक्रम में से किसी विशेष क्षण को चुनकर उसे हाईलाइट करने का नाम ही लघुकथा है। इसे और आसानी से समझने के लिए शादी के एल्बम का उदाहरण लेना समीचीन होगा।

शादी के एल्बम में उपन्यास की तरह ही कई अध्याय होते हैय तिलक का, मेहँदी का, हल्दी का, शगुन, बरात का, फेरे-विदाई एवं रिसेप्शन आदि का। ये सभी अध्याय स्वयं में अलग-अलग कहानियों की तरह स्वतंत्र इकाइयाँ होते हैं। लेकिन इसी एल्बम के किसी अध्याय में कई लघुकथाएँ विद्यमान हो सकती हैं। कई क्षण ऐसे हो सकते हैं जो लघुकथा की मूल भावना के अनुसार होते हैं। उदहारण के तौर पर खाना खाते हुए किसी व्यक्ति का हास्यास्पद चेहरा, किसी धीर-गंभीर समझे जाने वाले व्यक्ति के ठुमके, किसी नन्हे बच्चे

की सुन्दर पोशाक, किसी की निश्छल हँसी, शराब के नशे से मस्त किसी का चेहरा, किसी की उदास भाव-भंगिमा या विदाई के समय दूल्हा पक्ष के किसी व्यक्ति के आँसू। यही वे क्षण हैं जो लघुकथा हैं। लघुकथा उड़ती हुई तितली के परों के रंग देख-गिन लेने की कला का नाम है। स्थूल में सूक्ष्म ढूँढ लेने की कला ही लघुकथा है। भीड़ के शोर-शराबे में भी किसी नन्हें बच्चे की खनखनाती हुई हँसी को साफ साफ सुन लेना लघुकथा है। भूसे के ढेर में से सुई ढूँढ लेने की कला का नाम लघुकथा है।

लघुकथा विसंगतियों की कोख से उत्पन्न होती है। हर घटना या हर समाचार लघुकथा का रूप धारण नहीं कर सकता। किसी विशेष परिस्थिति या घटना को जब लेखक अपनी रचनाशीलता और कल्पना का पुट देकर कलमबंद करता है तब एक लघुकथा का खाका तैयार होता है।

लघुकथा एक बेहद नाजुक सी विधा है। एक भी अतिरिक्त वाक्य या शब्द इसकी सुंदरता पर कुठाराघात कर सकता है । उसी तरह ही किसी एक किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द की कमी इसे विकलांग भी बना सकती है। अतरू लघुकथा में केवल वही कहा जाता है, जितने की आवश्यक होती है। दरअसल लघुकथा किसी बहुत बड़े परिदृश्य में से एक विशेष क्षण को चुरा लेने का नाम है। लघुकथा को अक्सर एक आसान विधा मान लेने की गलती कर ली जाती है, जबकि वास्तविकता बिलकुल इसके विपरीत है। लघुकथा लिखना गद्य साहित्य की किसी भी विधा में लिखने से थोड़ा मुश्किल ही होता है। क्योंकि रचनाकार के पास बहुत ज्यादा शब्द खर्च करने की स्वतंत्रता बिलकुल नहीं होती। शब्द कम होते हैं, लेकिन बात भी पूरी कहनी होती है। और सन्देश भी शीशे की तरह साफ देना होता है। इसलिए एक लघुकथाकार को बेहद सावधान और सजग रहना पड़ता है।

लघुकथाकार अपने आस-पास घटित चीजों को एक माइक्रोस्कोपिक दृष्टि से देखता है और ऐसी चीज उभार कर सामने ले आता है जिसे नंगी आँखों से देखना असंभव होता है। दुर्भाग्य से आजकल लघुकता के नाम पर समाचार, बतकही, किस्सा-गोई यहाँ तक कि चुटकुले भी परोसे जा रहे हैं। उदहारण के लिए किसी व्यक्ति का केले के छिलके पर फिसलकर गिर जाने को, सड़क के किनारे सर्दी के कारण किसी की हुई मौत को, या किसी ढाबे पर काम करने वाले बाल श्रमिक की दुर्दशा को घटना या समाचार तो कहा जा सकता है, किन्तु लघुकथा हरगिज नही। कथा-तत्व ही ऐसी घटनाओं को लघुकथा में परिवर्तित कर सकता है। श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने कथा तत्व के महत्त्व को कुछ यूँ वर्णित किया है जब हम कहानी की बात करते हैं तो दादी-नानी द्वारा सुनाई जाने वाली लोककथाओं का स्मरण हो आता है। लोककथा में सरल भाषा में एक कथा-तत्व रहता है जो बच्चे और बूढ़े, दोनों को बराबर बांधे रखने की क्षमता रखता है। यही कथातत्व कहानी में भी अपेक्षित है। कहानी में यदि कथा-तत्व नहीं है तो वह संस्मरण, रिपोर्ताज, निबन्ध कुछ भी हो सकता है, एक अच्छी कहानी नहीं हो सकती। कथा-तत्व कहानी का मूल है।'

लघुकथा लेखन प्रक्रिया

मैं लघुकथा लेखन प्रक्रिया को भवन-निर्माण शिल्प की तरह ही देखता हूँ।

भवन-निर्माण में सबसे पहले किसी भूमि खंड का चुनाव किया जाता है, उसी तरह लघुकथा में भी सबसे पहले कथानक (प्लॉट) चुना जाता है। फिर उस भूमि खंड की नींवों को भरा जाता है। लघुकथा में इस नींव भरने का अर्थ है उस कथानक को अगले कदम के लिए चुस्त-दुरुस्त करना। नींव भरने के पश्चात उस भूमि खंड पर भवन का निर्माण किया जाता है। यह भवन-निर्माण लघुकथा में रचना की रूपरेखा अर्थात शैली कहलाता है। जिस प्रकार भवन का ढाँचा तैयार होने के बाद उसकी साज-सज्जा होती है, बिल्कुल उसी तरह से ही लघुकथा में काट-छील करके उसको सुंदर बनाया जाता है। समृद्ध भाषा एवं उत्ष्ट संप्रेषण लघुकथा में इसी रूपसज्जा का हिस्सा माना जाता है। भवन पूरी तरह बन जाने के बाद अंतिम कार्य होता है, उसका नामकरण। नये घर को सुंदर और सार्थक नाम देने हेतु हम लोग ज्योतिषियों तक की सलाह लेते हैं। बिल्कुल यही महत्व लघुकथा के शीर्षक का भी है। शीर्षक, दुर्भाग्य से लेखन व्यवहार में लघुकथा का सबसे उपेक्षित पक्ष हुआ करता है। दस में से नौ शीर्षक बेहद चलताऊ और साधारण पाये जाते हैं। जबकि लघुकता मे शीर्षक इतना महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग हुआ करता है कि बहुत बार शीर्षक ही लघुकथा की सार्थकता को अपार ऊंचाइयाँ प्रदान कर देता है। अतरू शीर्षक ऐसा हो जो लघुकथा में निहित संदेश का प्रतिनिधित्व करता हो, या फिर लघुकथा ही अपने शीर्षक को पूर्णतयरू सार्थक करती हो।

लघुकथा लेखन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग

1. जिस प्रकार भवन निर्माण हेतु सबसे पहले भू-खंड (प्लॉट) का चुनाव होता है बिलकुल वैसे ही लघुकथा लिखने के लिए कथानक या प्लॉट का चयन किया जाता है। लघुकथा लेखन में यह सब से महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो रचनाकार के अनुभव, उसकी समझ और विश्लेषणात्मक दृष्टि पर निर्भर करती है। संक्षेप में कहें तो सबसे पहले लघुकथाकार को यह निर्णय लेना होता है कि वास्तव में उसको 'क्या कहना है।' इसका तात्पर्य है - कथानक (प्लॉट) का चुनाव।

2. जैसे पहली प्रक्रिया है 'क्या कहना है', वहीं दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है 'क्यों कहना है', अर्थात लघुकथा कहने का उद्देश्य वास्तव में क्या है। यह भी भवन निर्माण कला की प्रक्रिया के एक हिस्से की ही तरह है जिसमे निर्माण करने वाला भवन बनाने का उद्देश्य तय करता है। अक्सर लघुकथा के अंत से ही उसके उद्देश्य का पता चल जाता है।

3. अगला पड़ाव है, जो कहना है वह 'कैसे कहना है', इस बात का सम्बन्ध लघुकथा की भाषा से है। भाषा जितनी सरल और अक्लिष्ट होगी शब्दों का चुनाव जितना सटीक होगा, रचना उतनी ही प्रभावशाली बनेगी । भारी भरकम शब्दों एवं अस्वाभाविक बिम्बों का उपयोग रचना को उबाऊ बना सकता है। भाषा का प्रयोग यदि पात्रनुकूल या परिस्थतिनुकूल हो तो रचना जानदार हो जाती है। जबकि चलताऊ, खिचड़ी एवं कमजोर शब्दावली रचना को कुरूप बना देती है। एक लघुकथाकार किसी भाषा-वैज्ञानिक से कम नहीं होता। अतरू उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसका भाषा पर पूर्ण नियंत्रण हो। जहाँ बेहद क्लिष्ट शब्दावली रचना को बोझिल बनाती है,

वहीं आम बाजारू भाषा रचना में हल्कापन लाती है। भाषा में सादगी, स्पष्टता एवं सुभाषता किसी की लघुकथा में चार चाँद लगाने में सक्षम होती हैं।

4. लघुकथा लेखन में अगला सबसे अहम कदम है इसका शिल्प। शिल्प चुनाव भी बिलकुल भवन निर्माण के दौरान शिल्प निर्धारण करने जैसा ही है जिससे भवन का चेहरा-मोहरा निश्चित होता है। शिल्प की कोई निजी प्रामाणिक परिभाषा नहीं होती है। एक स्वतंत्र इकाई होते हुए भी वास्तव में यह बहुत सी अन्य इकाइयों पर निर्भर होती है। अगर भवन निर्माण के हवाले से देखा जाये तो ताज महल का अपना शिल्प है, कुतुब मीनार का अपना, तो संसद भवन का अपना। इसलिए शिल्प इस बात पर निर्भर करता है कि उसे किस चीज के लिए उपयोग किया जा रहा है। अर्थात भवन में कमरे दो हों या दो दर्जन, चारदीवारी 4 फीट ऊंची हो या 7 फीट, फर्श साधारण हो या कि संगमरमर का, छत की ऊंचाई कितनी हो, घर में पेड़-पौधे हों कि गमले, मकान स्वयं रहने के लिए बनाया गया है या किराये पर देने के लिए - ये सब बातें मिल कर शिल्प निर्धारण का कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए किसी आवासीय भवन या इकाई में पर्याप्त मात्रा में हवा एवं धूप का आवागमन अति आवश्यक माना जाता है, लेकिन वह किस दिशा से और कितने समय के लिए आने चाहिए, यह देखना भी अति आवश्यक होता है। बेरोकटोक ठंडी हवा गर्मियों में तो शीतलता देगी किन्तु जाड़े में इसका प्रभाव बिलकुल विपरीत हो जायेगा। अतरू शिल्प भी भवन की संरचना और उपयोग पर निर्भर करता है। लघुकथा के आलोक में भी शिल्प को बिलकुल ऐसे ही देखा जाना चाहिए।

5. लघुकथा लेखन का एक और अति महत्वपूर्ण पहलू है इसकी शैली। उत्कृष्ट शब्द-संयोजन एवं उत्तम भाव-सम्प्रेषण लघुकथा शैली की जान है। मेरा मानना है कि बहुत बार सशक्त शैली कमजोर कथानक और ढीले शिल्प को भी ढक लिया करती है। शैली भी लघुकथा के चेहरे-मोहरे पर ही निर्भर होती है, जिसका चुनाव बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। मुख्य तौर पर लघुकथा वर्णनात्मक, वार्तालाप शैली अथवा मिश्रित शैली (जिसमे कथन के इलावा पात्रों के मध्य संवाद/वार्तालाप भी होता है) में लिखी जाती है। यदि कथानक की आवश्यकता हो तो मोनोलॉग शैली (स्वयं से बात) में भी लघुकथा कही जा सकती है। हालाँकि निजी तौर पर मुझे इस शैली में लिखना पसंद नहीं। क्योंकि इसमें अक्सर लेखक पक्षपाती हो जाता है।

6. लघुकथा लेखन का एक और महत्वपूर्ण (किन्तु दुर्भाग्य से अति उपेक्षित) हिस्सा है 'शीर्षक', वास्तव में शीर्षक को लघुकथा का ही हिस्सा माना जाता है। शीर्षक का चुनाव यदि पूरी गंभीरता से किया जाये तो अक्सर शीर्षक ही पूरी कहानी बयान कर पाने में सफल हो जाता है या फिर लघुकथा ही अपने शीर्षक को सार्थक कर दिया करती है। जिस प्रकार किसी भवन का नामकरण बहुत सोच समझकर किया जाता है, लघुकथा का शीर्षक भी उसी प्रकार चुनना चाहिए। सुन्दर और सारगर्भित शीर्षक भी लघुकथा की सुंदरता में चार चाँद लगा देता है।

7. लघुकथा का अंत करना एक हुनर है। लघुकथा का अंत उसके स्तर और कद-बुत को स्थापित करने में एक बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिकतर सफल लघुकथाएँ अपने कलात्मक अंत के कारण ही पाठकों को प्रभावित करने में सफल रहती हैं। विद्वानों के अनुसार लघुकथा का अंत ऐसा हो जैसा लगे अचानक किसी ततैया ने डंक मार दिया हो, जैसे किसी फुलझड़ी ने आँखों को चकाचौंध कर दिया हो, जैसे किसी ने एकदम सुन्न और सन्न कर दिया हो! एक ऐसा धमाका जिसने बैठे बिठाये हुओं को हिला कर रख दिया हो, जो इतने प्रश्न-चिन्ह छोड़ जाए की पाठक एक से अधिक उत्तर ढूँढने पर मजबूर हो जाए। जो विचारोत्तेजक हो, जो पाठक के विचारों को आंदोलित कर दे। जो किसी भी सूझवान व्यक्ति को मुठ्ठियाँ भींचने पर विवश कर दे।

कहा-अनकहा

लघुकथा में जो कहा जाता है वह तो महत्वपूर्ण होता ही है, किन्तु उससे भी महत्वपूर्ण वह होता है जो 'नहीं कहा जाता।' लघुकथाकारों के लिए इस 'जो नहीं कहा जाता' को समझना बहुत आवश्यक है। दरअसल इसके भी आगे तीन पहलू हैं जिन्हें आसान शब्दावली में कहने का प्रयास किया है-

1. जो नहीं कहा गया - अर्थात वह इशारा जिसके माध्यम से एक सन्देश दिया गया हो या बात को छुपे हुए ढंग या वक्रोक्ति के माध्यम से कही गयी हो। उदाहरण हेतु मैं श्री गणेश बागी जी की एक लघुकथा 'श्रेष्ठ कौन' का एक हिस्सा प्रस्तुत कर रहा हूँ -

''पीतल ने कहा कि उसके बर्तनों में देवों को भोग लगाया जाता है, कुलीनजनों के पास उसका स्थान है जबकि ऐलुमिनियम के बर्तनों में झुग्गी-झोपड़ी के लोग खाते हैं और तो और इसका कटोरा भिखमंगे लेकर घूमते रहते हैं । ऐलुमिनियम अपने पक्ष में कोई विशेष दलील नहीं दे सका। चाँदी महाराज ने अपने निर्णय में कहा कि पीतल भरे हुए को भरता है जबकि ऐलुमिनियम भूखे को खिलाता है, अतरू भूखे को खिलाने वाला ही सदैव श्रेष्ठ होता है ।

''यह निर्णय सुनकर एक कोने में पड़ी 'पत्तल' मुस्कुरा उठी ।''

पत्तल का मुस्कुराना बिना कुछ कहे ही सब कुछ कह गया। यही लघुकथा की सुंदरता है। क्या यहाँ पत्तल को तर्क-वितर्क करते हुए नहीं दर्शाया जा सकता था? बिलकुल दर्शाया जा सकता था, लेकिन उस स्थिति में लघुकथा 'जो नहीं कहा गया' नामक आभूषण से वंचित न रह जाती?

दूसरा उदाहरण है श्री रवि प्रभाकर जी की लघुकथा 'दंश'

''बहन! आज मुझे काम से लौटने में देर हो जाएगी, तब तक तुम मुन्नी को अपने पास ही रखना।'' उस विधवा ने हाथ जोड़ते हुए अपनी पड़ोसन से आग्रह किया।

''पर अब तो तेरा देवर भी गाँव से आया हुआ है, तो फिर.....।''

''इसीलिए तो तुम्हारे पास छोड़ रही हूँ।''

अंतिम पंक्ति में बिना कुछ कहे ही क्या सब कुछ नहीं कह दिया गया?

2. दूसरा बिंदु है 'जो नहीं कहा जाना चाहिए था – अर्थात वह अनावश्यक विवरण जिसकी लघुकथा में कोई आवश्यकता ही नहीं थी और जसके बगैर भी बात बन सकती थी। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्ति देखें –

''जनरल मेनेजर मिस्टर खन्ना अपनी नई हौंडा सिटी कार से नीचे उतरे, उन्होंने महंगा विदेशी सूट, चमचमाते हुए जूते, रे–बैन का चश्मा पहना हुआ था और उनके हाथ में लाल रंग का ब्रीफकेस था।''

यह विवरण कहानी में हो तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन लघुकथा का नाजुक सा स्वभाव इतना भारी भरकम विवरण बर्दाश्त नहीं कर सकता, जेनरल मेनेजर खन्ना है या कपूर क्या फर्क पड़ता है? गाड़ी किस कंपनी की है क्या इससे कुछ अंतर पड़ेगा? सूट विदेशी हो भारतीय, चश्मा रे–बैन का है या देसी, (या फिर चश्मा न भी पहना हो) तथा सूटकेस लाल हो हरा या नीला क्या ये बात कोई मायने रखती है? क्या इस पूरी पंक्ति को यूँ लिख देने से ही बात स्पष्ट नहीं हो जाएगी?–

1. सूट–बूट पहने जनरल मेनेजर साहिब अपनी गाड़ी से नीचे उतरे।'
2. इसी पंक्ति को यदि और कसना हो तो यूँ भी कहा जा सकता है–

   'जनरल मेनेजर साहिब अपनी गाड़ी से नीचे उतरे।'

   जाहिर है कि कोई जनरल मैनेजर पायजामे में तो दफ्तर आने से रहा। (मेरे एक सुहृदय मित्र श्री अनिल चौहान के सुझावनुसार)
3. 'जो कहा तो जाना चाहिए था लेकिन कहा नही गया। यह 'मिसिंग–लिंक' रचना में एक अजीब सा अधूरापन ला देता है। पूरी कथा पढ़ने के बाद यदि कोई पाठक यह प्रश्न करे कि 'फिर क्या हुआ? 'तो समझ जाना चाहिए की कोई कड़ी लघुकथा से नदारद है। उदाहरण हेतु एक आशु–लघुकथा प्रस्तुत है–

''तकरीबन हर आधे घंटे बाद सिगरेट पीने के आदी मिश्रा जी को आज चार–पांच घंटे बिना सिगरेट के रहना पड़ा। घर में पूजा थी, अतरू न तो उन्हें धूम्रपान का समय ही मिला न ही अवसर।

'राहुल, सिगरेट खत्म हो गई है, जरा भाग कर एक पैकेट तो लेकर आ बाजार से, जान निकली जा रही है यार बगैर सिगरेट के'

पंडित जी को विदा होते ही मिश्रा जी ने अपने बेटे को सौ का नोट थमाते हुए कहा।

लगभग एक घण्टे बाद बाद जब राहुल घर लौटा तो मिश्रा जी ने कहा

'सिगरेट ले आया बेटा।'

'सॉरी पापा ! मैं भूल गया।'

कहकर राहुल अपने कमरे की तरफ चल दिया।''

इस लघुकथा को पढ़कर पाठक यह प्रश्न नहीं करेगा कि 'फिर क्या हुआ?' सिगरेट के लिए तड़पते हुए व्यक्ति ने क्या कोई प्रतिक्रिया जाहिर न की होगी? और आखिर राहुल सिगरेट लेकर क्यों नहीं आया? यह 'नदारद कड़ी' लघुकथा की एक कमजोरी मानी जाती है।

लघुकथा का अकार

यह प्रश्न बरसों से उठाया जाता रहा है कि लघुकथा का आदर्श आकार या शब्द-सीमा क्या हो। मेरे निजी मत में लघुकथा का आकार वास्तव में उसके प्रकार पर निर्भर करता है। कथानक के हिसाब से एक लघुकथा अपना आकार स्वयं ही निर्धारित कर लिया करती है। स्मरण रखने योग्य बात केवल यह है कि लघुकथा इस प्रकार लिखी जाए कि उसमे एक भी अतिरिक्त शब्द जोड़ने अथवा घटाने की गुंजाइश बाकी न बचे। वैसे आम हिसाब से एक लघुकथा अधिकतम 300 शब्दों से अधिक नहीं जानी चाहिए।

लघुकथा के प्रकार

मुख्यत: लघुकथा की तीन प्रचलित शैलियाँ हैं।

1. विवरणात्मक (बिना किसी संवाद के लिखी गई लघुकथा)

उदहारण के लिए देखें-

'आज भी आँख खुलते ही रोज की ही तरह सुबह -सुबह इंतजार किया उसका। दरवाजा खोला ही था कि सायकिल पर चढा दुबला सा लडका दरवाजे पर चेतना की चाबी फेंक गया । रोज की ही तरह ऐसे लपककर स्वागत किया मानो बरसों से इंतजार किया हो उसका । अंदर ले आया और टेबल पर फैला कर परत -दर- परत तहों को खोलता गया । चेतना मन- पौधा खुलकर कुलबुलाती हुई जन्म से परिपक्व होने तक का सफर शनै: शनै: तय करने लगी ।तहें अब अपने आखिरी विराम को पहुँच, मन को गहन चिंतन में डाल ..... चेतना अपने सम्पूर्ण यौवन में स्थापित थी । तभी सहसा घड़ी पर नजर पडीं । समेटकर सब जल्दी से रोजमर्रा के काम की ओर बढते हुए .....अब चेतना का ढलान हावी हो चला था । दिन ढलनें तक जिंदगी की कचर - पचर मन - मस्तिष्क पर हावी हो चुकी थी और चेतना विसर्जित। आदमी सो चुका था और चेतना मर चुकी थी तब तक के लिए, जब तक फिर सुबह घर के दरवाजे पर सायकिल चलाता हुआ लडका चेतना की चाभी उसके दरवाजे आकर फिर फेंक नहीं जाता।'

2. संवादात्मक (केवल संवादों में लिखी गई लघुकथा)

उदहारण के लिए देखें-

'अरे ताऊ इलेक्शन आ गए हैं, इस बार वोट किस को दे रहे हो?'

'अरे हमें तो अभी ये ही नहीं पता कि इस बार ससुरा खड़ा कौन कौन है।'

'एक तो वही कुर्सी पार्टी वाला है।'

'अरे वो चोर? छोड़ो, साले पूरा देश लूट कर खा गये।'

'नई पार्टी वाला भी खड़ा है।'

'कौन? वो जो आपस में लोगों को लड़ाता रिता है? दफा करो उसको।'

'एक नीली पार्टी वाली भी है न।'

'उसको वोट दे दिया तो पीछे वाली बस्ती सर पर मूतेगी हमारे।'

'तो फिर कामरेडों को वोट किया जाए?'

'कौन वो जिंदाबाद मुर्दाबाद वाले? अरे वो तो होम्योपैथी की दवाई जैसे हैं - न कोई फायदा न नुकसान।'

'तो आखरि वोट डालोगे किस को?'

'हम तो अपनी जात वाले को ही डालेंगे, वोट खराब थोड़े न करना है।'

3. मिश्रित (विवरण एवं संवाद युक्त लघुकथा)

उदहारण के लिए देखें-

'देख ली अपने चेले की करतूत?' वयोवृद्ध शायर के सामने एक पत्रिका को लगभग फेंकते हुए एक समकालीन ने कहा।

'क्या हो गया भाई? इतना भड़क क्यों रहे हो ?'

'इसमें अपने चेले का आलेख पढ़िए जरा।'

'कैसा आलेख है?'

'आपकी गजलों में नुक्स निकाले हैं उसने इस पत्रिका में, आपकी गजलों में। मैं कहता था न कि मत सिखाओ ऐसे तघ्न लोगों को?'

समकालीन बोले जा रहे थे, किन्तु वयोवृद्ध शायर बड़ी तल्लीनता से आलेख पढ़ने में व्यस्त थे।

'देख लिया न? अब बताइए, क्या मिला आपको ऐसे लोगों पर दिन रात मेहनत करके?'

'उम्र के आखरी पड़ाव में अपने शिष्य की इतनी प्रगति और ईमानदारी देखकर मुझे बहुत कुछ मिल गया भाई।' पत्रिका एक तरफ रखते हुए उनके चेहरे पर एक अनोखी चमक थी।

'ऐसा क्या कुबेर का खजाना मिल गया आपको?'

'आज मुझे अपना सच्चा उत्तराधिकारी मिल गया है।'

जल्दबाजी- काम शैतान का

जो विचार मन में आए उसको परिपक्व होने का पूरा समय दिया जाना चाहिए, पोस्ट अथवा प्रकाशन की जल्दबाजी से लघुकथा अपनी सुंदरता खो सकती है। इस आलोक में आद्द गौतम सान्याल जी के निम्नलिखित शब्द स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं-

'लघुकथाएँ किसी अस्थिर समाज में अधिक उपजती हैं जिसमें भौतिक उत्पादन के साधन और मानसिक उत्पादन के साधनों में तीव्र संघर्ष दिखाई देता है। लघुकथा हठात् जन्म नहीं लेती, अकस्मात् पैदा नहीं होती। दूसरे शब्दों में कहें तो लघुकथा तात्क्षणिक प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं होती। जब कोई कथ्यनिर्देश देर तक मन में थिरता है और लोकसंवृत में अखुआ उठता है, तब जाकर जन्म ले पाती है लघुकथा । जैसे सीपी में मोती जन्म लेता है। जब कोई धूलकण या फॉरेन बॉडी बाहर से सीपी में प्रवेश करती है तो उसे घेरकर सीपी में स्राव शुरू हो जाता है। एक दीर्घकालिक प्रक्रिया के तहत वह धूलिकण एक टडूमर के रूप में मोती का रूप ग्रहण कर लेता है। कहना न होगा कि इस सहजात जैव प्रक्रिया के तहत सीपी को एक गहरी और लंबी वेदना से गुजरना होता है। आदमी विवश होकर ही लिखता है जैसे कोई झरना विवश होकर अन्ततरू फूट निकलता है। यहाँ तक तो एक कविताकहानी या लघुकथा में कोई विशेष फर्क नहीं। फर्क इतना है कि साधारणतरू एक लघुकथा का लगभग अंतिम प्रारूप व्यक्त होने के पहले ही अपना रूपाकार ग्रहण कर लेता है। यह तथ्य क्रोचे का गड़बड़ाता नहीं है। कहना बस इतना है कि जीवन महज एक तथ्य नहीं है यह अपने आप में कथ्य भी है। जब जीवन के तथ्य और कथ्य एकमेक होकर गद्य के प्रारूप में अन्वितसंक्षिप्तियों में प्रकट होते हैं तो उसे लघुकथा कहते हैं। लेकिन 'मोती' का प्रारूप ग्रहण कर लेने से ही लघुकथा की सृजनप्रक्रिया संपन्न नहीं हो जाती। इसके बाद एक सूक्ष्म कलाजन्यशल्यचिकित्सा अपेक्षित है। इसके बाद अत्यंत सतर्कता बरतते हुए सीपी से मोती को निकालना होता है। जो सीपी से मोती को नोचकर निकालते हैं वे हत्यारें हैं, कसाई हैं, बनिए हैं, शीघ्रस्रावी हड़बडिण्ए हैं। उन्हें किसी भी दृष्टि से लघुकथाकार नहीं कहा जा सकता।'

लघुकथाकारों के लिए स्मरण रखने योग्य महत्वपूर्ण बातें :

1. केवल छोटे आकार की वजह से ही हरेक रचना लघुकथा नही होती। आकार में लघु और कथा-तत्व से सुसज्जित रचना को ही लघुकथा कहा जाता है।
2. कहानी के संक्षिप्तिकरण का नाम लघुकथा नही है। यह एक स्वतंत्र विधा है और इसका अपना विशिष्ट शिल्प-विधान है।
3. अनावश्यक विवरण एवं विस्तार से हर हाल में बचा जाना चाहिए।
4. पात्रों की संख्या पर नियंत्रण रखना चाहिए, पाँच पंक्तियों की लघुकथा में यदि 6 पात्र डाल दिए गये तो पाठक उनके नामों मे ही उलझा रहेगा ।
5. शीर्षक का चुनाव सोच समझ कर करें। या तो शीर्षक ही कहानी को परिभाषित करता हो या कहानी शीर्षक को। मजबूरी, लाचारी, दहेज, सोच, धोखा, अत्याचार, चोर, लुटेरे आदि चलताऊ शीर्षक रचना को बदरंग और बदरूप कर देते हैं। शीर्षक को लघुकथा का प्रवेश द्वार माना गया है। एक कमजोर शीर्षक पाठक को रचना से दूर कर सकता है।

6. रचना में भाषण देने से गुरेज करें। जो कहना हो वह पात्रों या परिस्थितियों के माध्यम के कहना चाहिए। जब रचनाकार स्वयं पात्र की भूमिका में आ जाता है तो उसके पक्षपाती हो जाने के अवसर बहुत ज्यादा बढ़ जाते हैं।

7. लघुकथा को 'बोध कथा' या 'बच्चों के मुख से' 'हितोपदेश' अथवा 'प्रेरक प्रसंग' बनने या बनाने से गुरेज करना चाहिए।

8. एक लघुकथाकार के लिए लघुकथा, किस्सा-गोई, नारे एवं समाचार में अंतर को समझना बेहद आवश्यक है।

9. लघुकथा को प्रभावशाली बनाने के अतिरिक्त उसे दीर्घजीवी बनाने का भी प्रयत्न किया जाना चाहिए। ताजा समाचार या घटना का अक्षरशरू विवरणधचित्रण रचना की आयु पर कुठाराघात सिद्ध होता है।

10. लघुकथाकार को चाहिए कि वह व्यंग्य को कटाक्ष का रूप देने का प्रयास करे, ताकि लघुकथा हास्यास्पद या चुटकुला बनने से बची रहे।

11. विषय में नवीनता लाने का प्रयास करना चाहिए। चलताऊ विषयों से बचना चाहिए। मसलन 'कथनी-करनी में अंतर' बेहद पुराना और घिसा-पिटा एवं उबाऊ विषय हो चुका है और दुर्भाग्यवश अभी भी नए लघुकथाकारों का मनपसंद विषय है।

12. लघुकथा चूँकि एक विशेष क्षण को उजागर करने वाली एकांगी रचना होती है, अतरू रचना में विभिन्न काल-खंडों अथवा अध्यायों हेतु लिए कोई स्थान नही है। लघुकथा में एक से अधिक घटनाओं का समावेश इस विधा के कोमल कलेवर के विपरीत है।

13. हालाकि यह सच है कि लघुकथा के अंत में कुछ न कुछ पाठक के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, किंतु स्मरण रखना चाहिए कि स्पष्टता लघुकथा की जान मानी जाती है। अतः लघुकथा को पहेली बनने से भी बचाया जाना चाहिए।

14. लघुकथा में मनमर्जी का अंत थोपने से बचना चाहिए। क्योंकि लघुकथाकार जब निर्णायक की भूमिका में आ जाता है, तब लघुकथा के बेजान और बेमानी होने के अवसर बहुत ज्यादा बढ़ जाते हैं।

15. लघुकथा का अंत प्रभावशाली और विचारोत्तेजक होना चाहिए। यह बात याद रखनी चाहिए कि एक सशक्त अंत लघुकथा की कई कमियों को ढक दिया करता है।

योगराज प्रभाकर, संपादक लघुकथा कलश, 'उषा विला' 53, रोयल एन्क्लेव एक्सटेंशन, डीलवाल, पटियाला–147002, (पंजाब)

आधुनिक हिन्दी लघुकथा : आधार और विश्लेषण

डॉ. सतीशराज पुष्करणा

यों यह सत्य है कि आप कोई भी कार्य किसी भी क्षेत्र में करलें पूरा नहीं हो सकता, किन्तु हर आने वाली पीढ़ी का यह दायित्व बनता है कि वह अग्रज पीढ़ी द्वारा किये गये कार्यों को आगे बढ़ाये, जहाँ अग्रज पीढ़ी ने अपने काम को छोड़ा था। नई पीढ़ी उससे आगे उस कार्य को और अधिकाधिक विस्तार दे, ताकि विधा के इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन के क्षेत्रों में पूरा-पूरा न्याय हो सके।

लघुकथा के विकास हेतु नित्य-प्रति लघुकथा-सृजन के लिए नये-नये किन्तु सार्थक प्रयोगों का होना आवश्यक ही अनिवार्य भी है, किन्तु इसके साथ-ही-साथ तटस्थ भाव से इसके इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन-पक्ष को देखना भी अनिवार्य है। कारण, किसी भी विधा के जब तक इन सारे पक्षों पर पूरी गंभीरता से चिन्तन नहीं किया जाएगा लघुकथा का विकास वांछित ढंग से संभव नहीं होगा।

इसमें संदेह नहीं कि लघुकथा का सृजन पर्याप्त मात्रा में नित्य-प्रति हो रहा है, अब वह किस स्तर का हो रहा है, यह प्रश्न अलग है, मगर हो रहा है, उनमें श्रेष्ठ रचनाओं के चयन की आवश्यकता होगी। उसके चयन हेतु लघुकथा के इतिहास, रचना-विधान एवं मूल्यांकन की आवश्यकता भी होगी। अत: इस दिशा में अलग-अलग या सामेकित ढंग से कार्य करना होगा।

लघुकथा के इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन पर अलग-अलग कार्य तो हुए हैं, यह अलग बात है किन्तु जिस अनुपात में होने चाहिए थे अभी तक नहीं हुए। हालाँकि इस दिशा में मधुदीप ने 'पड़ाव और पड़ताल' के माध्यम से बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। उसे अब भिन्न-भिन्न ढंगो से विकास देने की

आवश्यकता है। इस हेतु पुराने लघुकथाकारों को अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिए और नयी पीढ़ी को अपनी अग्रज पीढ़ी को हर संभव सहयोग देना चाहिए।

इधर अभी कुछ दिन पूर्व ही रूप देवगुण के संपादकत्व में 'आधुनिक हिन्दी लघुकथा: आधार एवं विश्लेषण' नामक पुस्तक प्रकाश में आयी है, जो इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें लघुकथा-इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन सभी पक्षों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पूरी गंभीरता से विचार किया गया है।

सभी पक्षों को एक साथ प्रस्तुत करने हेतु उन्होंने पूरे लघुकथा-जगत् के समक्ष बीस सार्थक एवं उपयोगी प्रश्न रखे थे, किन्तु इस पुस्तक में मात्र 61 लघुकथाकारों के उत्तर ही प्रकाशित हैं यानी मात्र 61 लोगों ने ही इसे गंभीरता से लिया। अधिकांश ने तो पाँच-सात प्रश्नों के उत्तर देकर ही इतिश्री कर ली। बहुत कम लोग हैं, जिन्होंने सभी प्रश्नों के उत्तर दिए हैं।

यह अपने आप में एक शोध का विषय है कि ऐसा क्यों हुआ? अनेक चर्चित लोगों ने तो उत्तर दिये ही नहीं?यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है और इस पर किसी गोष्ठी, संगोष्ठी अथवा सम्मेलन में पूरी संजीदगी से बात होनी चाहिए। बात भी बेबाक किन्तु शालीनता और तटस्थ भाव से होनी चाहिए।

सभी पक्षों को एक साथ प्रस्तुत करने हेतु उन्होंने पूरे लघुकथा-जगत् के समक्ष बीस सार्थक एवं उपयोगी प्रश्न रखे थे, किन्तु इस पुस्तक में मात्र 61 लघुकथाकारों के उत्तर ही प्रकाशित हैं यानी मात्र 61 लोगों ने ही इसे गंभीरता से लिया। अधिकांश ने तो पाँच-सात प्रश्नों के उत्तर देकर ही इतिश्री कर ली। बहुत कम लोग हैं, जिन्होंने सभी प्रश्नों के उत्तर दिए हैं।

शालीनता और तटस्थता से मेरा ताप्पर्य यह है कि स्वयं को एक तरफ रखकर लघुकथा के हित में बात हो और बिना ईर्ष्या, द्वेष एवं झुँझलाहट के बात हो। कारण सर्वविदित है, लघुकथा में कुछ व्यक्ति एवं ग्रुप ऐसे हैं, जो पूरे लघुकथा के इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन को स्वयं अपने एवं अपने ग्रुप तक ही सीमित रखना चाहते हैं, किन्तु वे यही नहीं समझते कि इससे लघुकथा के साथ-साथ स्वयं उनकी भी बड़ी हानि हो रही है, जिसका उन्हें तत्काल अभी अनुमान नहीं हो पा रहा है। अत: ऐसी ओछी एवं गंदी सोच से बचकर तटस्थ एवं ईमानदार प्रयास करना चाहिए। ऐसे मामलों में चालाकी या धूर्त्तता काम नहीं आती और कभी-न-कभी इसका पर्दाफाश भी हो ही जाता है, इतिहास साक्षी है। दूराग्रहों से पूर्णत: बचने की आवश्यकता है।

इसकी प्रेरणा रूप देवगुण की इस पुस्तक से ली जा सकती है कि उन्होंने संपादन-कार्य में स्वयं को कहीं भी कसदन प्रस्तुत न कर, तटस्थ भाव से सामग्री प्रस्तुत करते हुए मात्र और मात्र लघुकथा हित में ही कार्य किया है।

इनके बीस प्रश्नों में लघुकथा के सभी पक्षों को एक साथ सटीक ढंग से प्रस्तुत करने में उन्होंने पर्याप्त सफलता पायी है और मेरी दृष्टि में संभवत: लघुकथा में इस प्रकार का यह प्रथम कार्य है, जिसकी लघुकथा को बहुत आवश्यकता थी।

यों यह सत्य है कि आप कोई भी कार्य किसी भी क्षेत्र में कर लें पूरा नहीं हो सकता, किन्तु हर आने वाली पीढ़ी का यह दायित्व बनता है कि वह अग्रज पीढ़ी द्वारा किये गये कार्यों को आगे बढ़ाये, जहाँ अग्रज पीढ़ी ने अपने काम को छोड़ा था। नई पीढ़ी उससे आगे उस कार्य को और अधिकाधिक विस्तार दे, ताकि विधा के इतिहास, रचना-विधान, शोध और मूल्यांकन के क्षेत्रों में पूरा-पूरा न्याय हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक मुख्यत: दो खंडों में विभक्त है, जिसमें पहला खंड प्रश्नोत्तर का है, तो दूसरा खंड इकसठ लघुकथाकारों के प्रश्नोत्तरों पर अधारित किया गया तटस्थ विश्लेषण है, जिसमें सभी प्रश्नोत्तरों का विश्लेषण-कार्य बहुत ही ईमानदारी से किया गया है। वस्तुत: यह खंड इस पुस्तक की उपयोगिता को कई गुणा बढ़ा देता है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक अपने ढंग की भिन्न किन्तु उपयेागी पुस्तक बन गयी है, जो शोधार्थियों को संदर्भ हेतु काफी सहयोग दे सकती है, आवश्यकता है इसे पूरी गंभीरता से पढ़ने तथा पुस्तक के उद्देश्य के मर्म तक जाने की।

अभी ऐसे अन्य अनेक कार्यो की अपेक्षा है।

डॉ0 सतीशराज पुष्करणा, अध्यक्ष, अ.भा. प्रगतिशील लघुकथा मंच 'लघुकथानगर',
महेन्द्रू, पटना–800006 (बिहार), मो0 : 8298443663, 9006429311
E-mail : satishrajpushkarana@gmail.com

✧ ✧ ✧

''हिन्दी लघुकथा का उद्‌भव और विकास''

विभा रानी श्रीवास्तव

दिनेशचन्द्र दुबे के शब्दों में- ''जिए हुए क्षण के किसी टुकड़े को उसी प्रकार शब्दों के टुकड़े-भर में प्राण दे-देना लघुकथा है। ''विक्रम सोनी के शब्दों में-''जीवन का सही मूल्य स्थापित करने के लिए व्यक्ति और उसका परिवेश, युगबोध को लेकर कम-से-कम और स्पष्ट सारगर्भित शब्दों में असरदार ढंग से कहने की विधा का नाम लघुकथा है।''

यों तो किसी भी विधा को ठीक-ठीक परिभाषित करना कठिन ही नहीं लगभग असंभव होता है, कारण साहित्य गणित नहीं है, जिसकी परिभाषाएं, सूत्र आदि स्थायी होते हैं। साहित्य की विधाओं को परिभाषा स्वरूप दी गयी टिप्पणियों से विधा के अनुशासन तक पहुँचा जा सकता है किन्तु उसे उसके स्वरूप के अनुसार हू-ब-हू परिभाषित नहीं किया जा सकता। लघुकथा भी इस तथ्य से भिन्न नहीं है।

इसका कारण यह है कि साहित्य की कोई भी विधा हो समयानुसार उसमें परिवर्त्तन होते रहते हैं, यह परिवर्तन विधा के प्रत्येक पक्ष के स्तर पर होते हैं। लघुकथा की भी यही स्थिति है। फिर भी लघुकथा के अनुशासन तक पहुँचने हेतु अनेक विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का सद्‌प्रयास किया है जिनमें सर्वप्रथम इसे परिभाषित करने का प्रयास किया वह हैं बुद्धिनाथ झा 'कैरव' जिन्होंने अपनी पुस्तक 'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' के पृष्ठ 267 पर न मात्र 'लघुकथा' शब्द का पर्यपग किया अपितु उसे इस प्रकार परिभाषित भी किया ''संभवत: लघुकथा शब्द अंग्रेजी के 'शॉट स्टोरी' शब्द का अनुवाद है। 'लघुकथा' और कहानी में कोई तात्विक अंतर नहीं है। यह लम्बी कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं है। लघुकथा का विकास दृष्टान्तों के रूप में हुआ। ऐसे दृष्टान्त नैतिक और धार्मिक क्षेत्रों से प्राप्त हुए। 'ईसप की कहानियों', 'पंचतंत्र की

कथाएँ', 'महाभारत', 'बाइबिल' जातक आदि कथाएं इसी के रूप में हैं।

आधुनिक कहानी के संदर्भ में 'लघुकथा' का अपना स्वतंत्र महत्त्व एवं अस्तित्व है। जीवन की उत्तरोत्तर द्रुतगामिता और संघर्ष के फलस्वरूप इसकी अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता ने आज कहानी के क्षेत्र में लघुकथाओं को अत्यधिक प्रगति दी है। रचना और दृष्टि से लघुकथा में भावनाओं का उतना महत्त्व नहीं है।

1958 ई. में लक्ष्मीनारायण लाल ने बुद्धिनाथ झा 'कैरव' द्वारा दी गई लघुकथा की परिभाषा को ही लगभग हू-ब-हू हिन्दी साहित्य-कोश (भाग-1) पृष्ठ 740 पर उतार दिया था। यहाँ यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'लघुकथा' नाम 'छोटी कहानी', 'मिनी कहानी', 'लघु कहानी' आदि नामों के बाद ही रूढ़ हुआ। लघुकथा को यों तो शब्दकोश के अनुसार स्टोरिएट (storiette) एवं उर्दू में 'अफसांचा' कहा जाता है। किन्तु ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन में डॉ. इला ओलेरिया शर्मा द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध 'द लघुकथा ए हिस्टोरिकल एंड लिटरेरी एनालायसिस ऑफ ए मॉर्डन हिन्दी पोजजेनर' (The Laghukatha, A Historical and Literary Analysis of a modern Hindi Prose Genre') में उन्होंने लघुकथा को storiette न लिखकर 'लघुकथा' (Laghukatha) ही लिखा है। अत: हमें यह मान लेने में अब कोई असुविधा नहीं है कि जिसे हम लघुकथा कहते हैं वह अंग्रेजी में लघुकथा ही है और storiette से मतलब छोटी कहानी आदि हो सकता है। खैर...

लघुकथा को यों तो अनेक लेखकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है किन्तु मैं जिन परिभाषाओं को वर्त्तमान लघुकथा के करीब पाती हूँ उन्हें यहाँ उद्धृत करना चाहती हूँ-

पृथ्वीराज अरोड़ा के शब्दों में - ''प्रामाणिक अनुभूतियों पर आधारित किसी एक क्षण को सुगठित आकार के माध्यम से लिपिबद्ध किया गया प्रारूप लघुकथा है। ''डॉ. माहेश्वर के शब्दों में- ''दरअसल कम-से-कम शब्दों में काफी पुरअसर ढंग से जिंदगी का एक तीखा सच कथा में ढाल दिया जाये तो वह लघुकथा कहलाएगी।''

दिनेशचन्द्र दुबे के शब्दों में- ''जिए हुए क्षण के किसी टुकड़े को उसी प्रकार शब्दों के टुकड़े-भर में प्राण दे-देना लघुकथा है। ''विक्रम सोनी के शब्दों में-''जीवन का सही मूल्य स्थापित करने के लिए व्यक्ति और उसका परिवेश, युगबोध को लेकर कम-से-कम और स्पष्ट सारगर्भित शब्दों में असरदार ढंग से कहने की विधा का नाम लघुकथा है।''

रामलखन सिंह के शब्दों में- ''अनुभव प्राय: घनीभूत होकर ही आते हैं और बिना पिघलाएं (डाइल्यूट किये) कहना लघुकथा है।''

वेद हिमांशु के शब्दों में- ''एक क्षण की आणविक मन:स्थिति को शाब्दिक सांकेतिकता द्वारा जो अभिव्यक्ति दी जाती है तथा जिंदगी के व्यापक कैनवास को रेखांकित करती है-लघुकथा है।''

डॉ. सतीशराज पुष्करणा के शब्दों में- ''समाज में व्याप्त विसंगतियों में किसी विसंगति को लेकर सांकेतिक भाषा-शैली में चलने वाला सारगर्भित प्रभावशाली एवं सशक्त कथ्य जब झकझोर/छटपटा देने वाला लघु आकारीय कथात्मक रचना का आकार धारण कर लेता है, तो लघुकथा कहलाता है।'' ये सारी परिभाषाएं मेरी दृष्टि से लघुकथा क्या है? तक पहुँचाने में पर्याप्त सहायक हैं। इन परिभाषाओं के माध्यम से हम लघुकथा को पहचान सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि लघुकथा का उद्‌भव कहाँ से माना जाए? अबतक हुए शोधों के आधार पर मैं यह कह पाने में स्वयं को सक्षम पाती हूँ कि,-''1874 ई० बिहार के सर्वप्रथम हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'बिहार-बन्धु' में कतिपय उपदेशात्मक लघुकथाओं का प्रकाशन हुआ था। इन लघुकथाओं के लेखक मुंशी हसन अली थे जो बिहार के प्रथम हिन्दी पत्रकार थे। ''(डॉ. राम निरंजन परिमलेन्दु, बिहार के स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी-कहानी-साहित्य, परिषद-पत्रिका, स्वर्ण जयंती अंक, वर्ष : 50, अंक: 1-4, अप्रैल 2010 से मार्च 2011, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना-4, पृष्ठ 261)

1875 ई० में भारतेंदु हरिश्चंद्र का लघुकथा - संग्रह परिहासिनी प्रकाश में आया इसके पश्चात तो फिर माखनलाल चतुर्वेदी, माधवराव सेप्ते, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, छबीलेलाल गोस्वामी, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, जगदीशचंद्र मिश्र, आनंदमोहन अवस्थी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, निराला, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, विनोबा भावे, सुदर्शन, रामनारायण उपाध्याय, पाण्डेय बेचन शर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, भृंग तुपकरी, दिगम्बर झा, रामधारी सिंह 'दिनकर', शरद कुमार मिश्र 'शरद', हजारी प्रसाद द्विवेदी, हरिशंकर परसाई, रावी, श्यामानन्द शास्त्री, शांति मेहरोत्रा, शरद जोशी, विष्णु प्रभाकर, भवभूति मिश्र, रामेश्वरनाथ तिवारी, पूरन मुद्‌गल इत्यादि ने लघुकथा को अपने-अपने समय के सच को रेखांकित करते हुए लघुकथा को ठोस आधार दिया। इसके पश्चात् सातवें-आठवें दशक में डॉ. सतीश दुबे, डॉ. कृष्ण कमलेश, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, भगीरथ, जगदीश कश्यप, महावीर प्रसाद जैन, पृथ्वीराज अरोड़ा, रमेश बत्तरा, बलराम, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, बलराम अग्रवाल, डॉ. कमल चोपड़ा, डॉ. शकुंतला किरण, विक्रम सोनी, सुकेश साहनी, अंजना अनिल, नीलम जैन, सतीश राठी, मधुदीप, मधुकांत, चित्रा मुद्‌गल, अशोक वर्मा, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, रूपदेवगुण, राजकुमार निजात, रामकुमार घोटड़, महेंद्र सिंह महलान, सुभाष नीरव इत्यादि ने इसे आधुनिक स्वरूप देकर साहित्य जगत् में समुचित प्रतिष्ठा दिलाते हुए विधिवत् विधा का स्थान दिलाया।

लघुकथा के लिए आठवां दशक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। इस दशक में अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जिनमें सारिका, तारिका, शुभ तारिका, समग्र, वीणा, मिनियुग, प्रगतिशील समाज, नालंदा दर्पण, दीपशिखा, अंतयात्रा, कहानीकार, प्रयास, दीपशिखा लघुकथा, विवेकानंद बाल सन्देश इत्यादि प्रमुख हैं। इसी काल में 'गुफाओं से मैदान की ओर '(सं० भगीरथ एवं रमेश जैन), 'श्रेष्ठ लघुकथाएं' (सं० शंकर

पुणतांबेकर'), 'समान्तर लघुकथाएं' (सं० नरेंद्र मौर्य एवं नर्मदा प्रसाद उपाध्याय),'छोटी-बड़ी बातें' (सं० महावीर प्रसाद जैन एवं जगदीश कश्यप), 'आठवें दशक की लघुकथाएँ' (सं० सतीश दूबे), 'बिखरे संदर्भ' (सं० डॉ. सतीशराज पुष्करणा), 'हालात', 'प्रतिवा', 'अपवाद', 'आयुध', 'अपरोक्ष' (सं० कमल चोपड़ा), 'हस्ताक्षर' (सं० शमीम शर्मा), 'आतंक (सं० नन्दल हितैषी एवं धीरेनु शर्मा)', 'लघुकथा:दशा और दिशा (सं० डॉ. कृष्ण कमलेश एवं अरविंद)' इत्यादि ने लघुकथा को साहित्य-जगत् विधा के रूप में न मात्र स्थापित कर दिया अपितु इसे पाठकों के मध्य लोकप्रिय बनाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसके पश्चात 'मानचित्र', 'छोटे-छोटे सबूत', 'पत्थर से पत्थर तक', 'लावा (विक्रम सोनी)', 'चीखते स्वर (नरेंद्र प्रसाद 'नवीन')', 'लघुकथा: सृजन एवं मूल्यांकन (कृष्णानन्द कृष्ण)', 'काशें', 'अक्स-दर-अक्स', 'आज के प्रतिबिंब', 'प्रत्यक्ष', 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ लघुकथाएं', 'तत्पश्चात', 'मंटो और उनकी लघुकथाएं', 'बिहार की हिन्दी लघुकथाएं', 'बिहार की प्रतिनिधि हिन्दी लघुकथाएं', 'कथादेश', 'दिशाएं', 'आठ कोस की यात्रा', 'तनी हुई मुट्ठियाँ', 'पड़ाव और पड़ताल के 30 खंड (सं० मधुदीप), 'जिंदगी के आस-पास एवं पतझड़ के बाद (सं० राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु')', 'कल के लिए (सं० मिथलेश कुमारी मिश्र)', 'नई धमक (मधुदीप)', 'नई सदी की लघुकथाएं (अनिल शुर)', 'किरचों की वीची:वक्त की उलीची (सं० डॉ. सतीशराज पुष्करण)', 'अभिव्यक्ति के स्वर, खण्ड-खण्ड जिंदगी, यथार्थ सृजन, मुठ्ठी में आकाश: सृष्टि में प्रकाश (सं० विभा रानी श्रीवास्तव)' इत्यादि असंख्य संकलनों ने तथा रवि यादव (रेवाड़ीधहरियाणा) द्वारा अन्य लेखकों की लघुकथा का पाठ करना लघुकथा के विकास में सहायक हुआ है। लघुकथा में एकल संग्रह भी असंख्य लोगों के आ चुके हैं इनमें प्रमुख रूप से डॉ. सतीश दुबे, भगीरथ, बलराम, मधुदीप, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, बलराम अग्रवाल, कमल चोपड़ा, जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी, पारस दासोत, मधुकांत, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु', डॉ. मिथलेश कुमारी मिश्र, कमलेश भारतीय, सतीश राठी, विक्रम सोनी, डॉ. स्वर्ण किरण, सिद्धेश्वर, तारिक असलम 'तस्लीम', अतुल मोहन प्रसाद, सुकेश साहनी, रूपदेव गुण, शील कौशिक, राजकुमार निजात, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, प्रबोध कुमार गोविल, डॉ. रामकुमार घोटड़ इत्यादि अन्य अनेक का नाम सगर्व लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त लघुकथा कलश, लघुकथा डॉट कॉम, संरचना, दृष्टि, क्षितिज, ललकार, लकीरें, काशें, पुनः, सानुबन्ध, दिशा, व्योम, कथाबिम्ब, भागीरथी, अंचल, भारती, गंगा, आगमन, राही, साहित्यकार, क्रांतिमन्यु, पल-प्रतिपल आदि सैकड़ों पत्रिकाओं ने भी लघुकथा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। लघुकथा के विकास हेतु डॉ. शकुंतला किरण, शमीम शर्मा, डॉ. मंजू पाठक, डॉ. ईश्वरचंद्र, डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' शंकर लाल, डॉ. सीताराम प्रसाद आदि ने शोध प्रबंध लिखकर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। लघुकथा विकास में अन्य जिन माध्यमों का योगदान रहा है उनमें सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का बहुत महत्त्व है। लघुकथा-सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में पटना, फतुहा, गया, धनबाद, बोकारो, राँची, सिरसा, दिल्ली, इंदौर, बरेली, जलगाँव, होशंगाबाद, नारनौल, हिसार, जबलपुर इत्यादि के योगदान को भी विस्मृत

नहीं किया जा सकता। लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनियों के माध्यम से सिद्धेश्वर, सुरेश जांगिड़ उदय इत्यादि लोगों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके द्वारा पटना, धनबाद, राँची, लखनऊ, कैथल इत्यादि नगरों में लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनियों लग चुकी हैं। पटना, राँची, धनबाद, सिरसा, इंदौर में लघुकथा- मंचन भी हुए हैं। लघुकथा प्रतियोगिताओं एवं अनुवाद द्वारा भी सार्थक कार्य हुए हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन भी इस कार्य में पीछे नहीं रहे हैं। साक्षात्कारों-परिचर्चाओं द्वारा भी उल्लेखनीय कार्य हुए हैं। लघुकथा में समीक्षात्मक-आलोचनात्मक कार्य को जिन लोगों ने बल दिया है उनमें मधुदीप, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, जितेंद्र जीतू, डॉ. ध्रुव कुमार, डॉ. मिथलेश कुमारी मिश्र, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा, सुकेश साहनी, योगराज प्रभाकर, रवि प्रभाकर, बलराम अग्रवाल, सतीश दुबे, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, रमेश बतरा, जगदीश कश्यप, कमल चोपड़ा, राधिका रमण अभिलाषी, निशान्तर, डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, विक्रम सोनी, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु', प्रो. निशांत केतु, डॉ. स्वर्ण किरण इत्यादि प्रमुख हैं। पड़ाव और पड़ताल के तीस खंडों में अनेक नए आलोचक भी सामने आये हैं। अनेक राज्यों में जिनमें बिहार भी की सरकारों द्वारा लघुकथा के योगदान हेतु सम्मान एवं पुरस्कार भी दिए जाते हैं। इस कार्य में देशभर में सक्रिय अनेक संस्थाएं भी सोत्साह अपने दायित्व का निर्वाह कर रही हैं। बिहार, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, गुजरात संग कुछ और राज्यों की पाठ्य-पुस्तकों में भी लघुकथाएं शामिल हैं। लघुकथा -जगत् में आयी नयी पीढ़ी जिनमें संध्या तिवारी, कल्पना भट्ट, सरिता रानी, रानी कुमारी, वीरेंद्र भारद्वाज, आलोक चोपड़ा, पुष्पा जमुआर, कांता राय, कमल कपूर, अंजू दुआ जैमिनी, अनिता ललित, अंतरा करवड़े, अशोक दर्द, आकांक्षा यादव, आरती स्मित, इंदु गुप्ता, डॉ. लता अग्रवाल, उमेश महादोषी, उषा अग्रवाल 'पारस', ओम प्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश', कपिल शास्त्री, ज्योत्स्ना कपिल, कृष्ण कुमार यादव, चंद्रेश कुमार छतलानी, जगदीश राय कुलरियाँ, जितेंद्र जीतू, ज्योति जैन, त्रिलोक सिंह ठकुरेला, दीपक मशाल, डॉ. नीरज शर्मा सुधांशु, नीलिमा शर्मा निविया, पंकज जोशी, पवित्र अग्रवाल, पवन जैन, पूनम डोगरा, पूरन सिंह, मधु जैन, महावीर रँवाल्टा, माला वर्मा, मुन्नू लाल, राधेश्याम भारतीय, वीरेंद्र 'वीर' मेहता, शशि बंसल, शेख शहजाद उस्मानी, शोभा रस्तोगी, मृणाल आशुतोष, कुमार गौरव, सन्तोष सुपेकर, सीमा जैन, सुधीर द्विवेदी, सीमा सिंह, स्वाति तिवारी, पूर्णिमा शर्मा, मंजू शर्मा, दिव्या राकेश शर्मा, विभा रानी श्रीवास्तव इत्यादि प्रमुख हैं। इस पीढ़ी में अनन्त संभावनाएं हैं। मुझे विश्वास है यह पीढ़ी अपने से पूर्व पीढ़ी के कार्यों को पूरी त्वरा से आगे ले जाएगी। यह पीढ़ी भी लघुकथा के हर उस पक्ष में कार्य करेगी जिससे लघुकथा का विकास उत्तरोत्तर पूरी त्वरा से होता जाएगा।

विभा रानी श्रीवास्तव, 104, मंत्र भारती अपार्टमेन्ट, रूकनपुरा,
बेली रोड, पटना–800014

✧ ✧ ✧

लघुकथा का निबंध

जयप्रकाश मानस

यद्यपि साहित्यिक विधाओं के उपवन में यह लघुत्तम है पर समापवर्तक भी है जीवन का। लघुकथा का मतलब जीवन का लघुत्तम समापवर्तन। लघुकथा कई अर्थों में लघु है। वह कथा-कुल की सबसे कनिष्ठ सदस्या है, इसलिए लघु है। लघुकथा गद्य परिवार की सबसे छोटी विधा है। इन दृष्टियों से आप हम उसे लघु कह कर उपेक्षा नहीं कर सकते। पर यदि आप जब कभी उसे चुटकुले या किसी प्रेरक प्रसंग की छवि में आँक रहे होतें हैं तो आप स्वयं को किसी नौसिखिये लेखक, फूहड़ किस्म के रचनाकार, संपादक, आलोचक होने का स्वतः प्रमाण भी सौंप रह होते हैं।

लघुकथा पढ़ने-देखने में एक शब्द पर वस्तुतः यह दो भावों का गठबंधन है- लघु और कथा। एक-दूसरे के पूरक। यही लघुकथा की शास्त्रीयता है और इस शास्त्रीयता को आत्मसात किये बगैर लघुकथा की सिद्धि असंभव है ।

लघुता ही लघुकथा की प्रभुता है और उसमें जो कथा है वही इस लघुता की प्रभुता है। लघु यानी कि विधात्मक तौर पर जीवन की कोई सूक्ष्म इकाई या कोई कोण या फिर कोई दिशा की पड़ताल। और कथा यानी कथा जिसके बारे में फिलहाल किसी व्याख्या या पाद-टिप्पणी की जरूरत नहीं है। तो लघुकथा यानी छोटी-सी कथा। न तो कहानी का सार रूप और न ही अंग्रेजियत वाली शार्ट-स्टोरी। स्ट्रक्चर और टैक्स्चर दोनों में विशिष्ट और निजी मान्यताओं के साथ। लघुकथा का आशय घटना या समय के हिसाब से क्षण-क्षण की कथा किन्तु संवेदना या सरोकार की दृष्टि से जीवन की संपूर्णता के लिए सूक्ष्म-कथा। लघुकथा मत और मति-भिन्नता से भले ही अनगिनत परिभाषाओं से संपन्न है किन्तु अपने मूल में वह जीवन की आलोचना ही है। जीवन की आलोचना है इसलिए वह (कारण और परिणाम दोनों में) सर्वाधिक गतिशील रचनाकारों की प्रियतम् विधा है। उसकी आत्मा में यथार्थ का निवास है पर वह मात्र यथार्थवादी

विधा नहीं उसमें संपूर्ण भारतीयता, संपूर्ण मानवता और संपूर्ण वैश्विकता का अविछिन्न सौंदर्य भी है। फलत: शुष्क प्रगतिशीलता नहीं अपितु गतिशीलता का प्रखर प्रतिनिधित्व करने वाली विधा है और इस मायने में वह वाद नहीं - मानवीय संवाद का अजस्त्र आवाहन है।

लघुकथा को वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश, बौद्ध-जैन, ईसप, जातक बाईबिल आदि की कथाओं की तारत्मयता में भले ही हमारे पुरातत्व प्रिय विधाविद् देख रहे हों। भले ही उसे नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टांतों से विकसित मानने की आलोचकीय जिद्धी भी हो, किन्तु लघुकथा सांस्कृतिक चेतना से दूर भागते मनुष्य की वापसी के लिए नयी रचनात्मक चेष्टा है। वह हालात का हस्ताक्षर है। इन मायने में उसे दीर्घ ऐतिहासिकता से जोड़कर एक अखंड किन्तु असिद्ध कथा-परंपरा में देखना शायद अतिरिक्त मुगालता है या फिर लघुकथाकारों की आत्महीनता भी। यह मनुष्य की समग्रता के खंड-खंड होने के बरक्स रचनाकारों की संवेदनात्मक और समय-सम्यक विधा है। रंग और रूप दोनों ही दृष्टियों से। उसकी जमीन, उसका और उसका आकाश सबकुछ भिन्न है और ऐसी सारी कथागत अवधारणाओं से कहीं अलग। वह स्वयं में विशिष्ट और साहित्य के प्रजातंत्र में पूर्ण स्वतंत्र और पृथक विधा है ।

व्यंग्य या तीखापन लघुकथा का रस है पर यह व्यंग्य या लघु-व्यंग्य भी नहीं है। भले ही नामवरीय या परमांनदीय या मैनेजरीय दृष्टि में उसकी परतंत्रता और पंगुता भी दिखती हो पर कमलकिशोरीय और पुष्कणीय चेष्टा के सामने है कोई, जो उसे स्वतंत्र और अस्मितावान् विधा न मानने को सिद्ध कर सके। एक साहित्यिक विधा की संपूर्ण शर्तों के साथ.....भगवान को धन्यवाद कि ऐसे महानुभावों की कृपा के बगैर ही आज लघुकथा समुचे पाठकीय संसार में कंठहार बन चुकी है और इसके लिए लघुकथाकार और पाठक दोनों ही प्रणम्य हैं। लघुकथाकारों को आभार दिया जाना चाहिए कि उन्होंने लघुकथा के माध्यम से नया पाठकीय स्वाद बगराकर घटती हुई पाठकीयता को बनाये रखा और पाठक को इसलिए बधाई कि उसने अपनी संपूर्ण आस्था और विश्वास लघुकथा की झोली में उड़ेल दिया है। लघुकथा को केवल द्रुत गति वाले समय के दबाब से उपजी, विकसित और स्वीकृत विधा कहना गलत होगा।

यद्यपि साहित्यिक विधाओं के उपवन में यह लघुत्तम है पर समापवर्तक भी है जीवन का। लघुकथा का मतलब जीवन का लघुत्तम समापवर्तन। लघुकथा कई अर्थों में लघु है। वह कथा-कुल की सबसे कनिष्ठ सदस्या है, इसलिए लघु है। लघुकथा गद्य परिवार की सबसे छोटी विधा है। इन दृष्टियों से आप हम उसे लघु कह कर उपेक्षा नहीं कर सकते। पर यदि आप जब कभी उसे चुटकुले या किसी प्रेरक प्रसंग की छवि में आँक रहे होतें हैं तो आप स्वयं को किसी नौसिखिये लेखक, फूहड़ किस्म के रचनाकार, संपादक, आलोचक होने का स्वत: प्रमाण भी सौंप रह होते हैं।

लघुता उसका शिल्पगत आचरण है। लघुता भी कैसी? दूब की मानिंद। चंद्रमा की मानिंद। दूब कभी बड़ी नहीं होती, पर दूब की आभा समूचा वृक्ष भी नहीं जुटा पाता। चंद्रमा भी बड़ी

नजर नहीं आती। फुटबाल जैसा दिखाई देने वाली चंद्रमा छः महाद्वीप, सैकड़ों देश, हजारों नगर, लाखों गाँव और करोड़ों-खरबों लोगों के नाम चाँदनी रचती है। तो लघुता उसका आचरण मात्र है। विनम्र चीजों की निशानी है कि वे अपनी हाँकते नहीं। लघुकथा भी हाँकने में कमजोर है। यह उसकी अयोग्यता नहीं वरन् परम-योग्यता का प्रमाण है। है तो वह लघु पर वह एक समूची और सर्वकोणीय कथा का बखान या व्याख्या भी है। उसी कथा से कई कथाओं, इतिहासों, वर्तमानों और भविष्य की दिशा देखी जा सकती है। लघु होते हुए भी उसकी प्रभुता इसी लघुता में विद्यमान है। अपनी प्रभुता को अपनी लघुता में ही दिव्यता देने वाली किसी और विधा का नाम शायद ही आप या हम हिंदी वाले बता सकते हैं।

लघुकथा जीवन के एकांश का साक्षात्कार है, किसी एक दृष्य की वीडियोग्राफी है, व्याधिग्रस्त किसी एक अंतःअंग का एक्सरा है। लघुकथा में अतिरिक्त उपकथा या प्रसंग का प्रवेश वर्जित है। कथा-पात्रों की शारीरिक उपस्थिति भी वहाँ सीमित और अनुशासित है। यही आत्मानुशासन लघुकथा में संक्षिप्तता का आवश्यक उपकरण है। और संक्षिप्तता के लिए चुस्त-दुरुस्त किन्तु स्वाभाविक वाक्य विन्यास अपरिहार्य है। ऐसे में जाहिर है कि शब्द अमिधा से कम व्यंजकता से अधि प्रतिष्ठित हों । कथ्य और कथोपकथन या कथा-वर्णन निहायत स्वाभाविक हों। इसे एक चमकदार लघुकथा का खास आकर्षण कह सकते हैं। कृत्रिमता का लघुकथा से स्थायी बैर है। कथावस्तु और भाषा-शिल्प दोनों की ही दृष्टि से। हम जब लघुकथा की भाषा की बात करते हैं तो उसमें सहजता, पात्रनुकूलता, रोचकता, समकालीनता और संपूर्ण संप्रेषणीयता की भी बात करते हैं।

हम सभी जानते हैं कि लघुकथा की आकृति को लेकर तरह-तरह की अंकगणितीय उद्घोषणायें होती रही हैं। मैं समझता हूँ कि साहित्य में गणितीय स्थापनायें नहीं चलतीं। फिर लघुकथा मात्रिक छंद तो नहीं जिसे मात्राओं और शब्दों में बाँधा-छांदा जा सके। पर इसका मतलब नहीं कि उसमें कथा या ललित निबंध जैसी वाचालता की छूट हो। लघुकथा के सभी मान्य आचरणों की अवहेलना यदि लघुकथाकार न करे तो वह स्वयं लघुकथा को सीमित शब्दों में रख सकता है। मैं एक योग्य पाठक होने की दृष्टि से लघुकथा के समूचे भूगोल को एक ही बार में देखना चाहता हूँ यानी कि शीर्षक से लेकर उसके लेखक का नाम एक ही बार दिख जाये। उसके लिए पन्ना पलटने की बाध्यता न रहे।

लघुकथा लेखकीय उपस्थिति रहित विधा है। लघुकथा और जीवन के मध्य किसी की सत्ता स्वीकार नहीं है। लेखक यहाँ अदृष्य रहता है। उसी अदृश्यता में ही उसकी उपस्थिति होती है। रचना में उसकी उपस्थिति कला को खंडित करती है। उसे बोझिल बनाती है। पाठक और रचना के बीच व्यवधान बनती है। लघुकथाकार की अनुपस्थिति ही लघुकथा को कलासमृद्ध बनाती है। तो हम कह सकते हैं कि लघुकथाकार अन्य विधाकारों से कहीं अधिक त्यागी है। ज्यों-ज्यों

लघुकथाकार अपनी उपस्थिति के संभ्रमी दलदल में जा गिरता जाता है त्यों-त्यों लघुकथा की दम घुटने लगता है। कह सकते हैं कि लघुकथा में कला का सीमित प्रक्षेपण होता है। इस मायने में लेखक की अनुशासनप्रियता और सीमितता यहाँ गौरतलब हो सकती है। सीमितता लघुकथाकार का अंकुश है। सीमित शब्दों के सुंसगति से पाठक लघुकथा जैसे बीज में ही पौधे और उसकी समूची हरितिमा से प्लावित हो सकता है।

सच्ची लघुकथा यथार्थ की ईमानदार पड़ोसन है। इस अर्थ में कि वह यथार्थ की संपूर्ण और बारीक से बारीक चुगली में चुकती नही है। उसे विडम्बनाओं से घृणा है। उसे विद्रपताओं से परहेज है। वह है ना आखिर मानवतावादी पड़ोसी। पड़ोसी इस रूप में भी है कि वह आज पाठक के सबसे करीब की विधा है। एक आम पाठक कथा, उपन्यास, बाँचने से पूर्व उसके आकार और सीमा का परीक्षण करता है पर लघुकथा पर पहले अपनी आँखों और मन को ले जोड़ता है। लघुकथा ऐसी विधा है जो पाठक के आखों में एक ही बार में अपनी आकृति के साथ दिखाई दे जाती है। प्रकृति भले ही बाद में पता चले पर लघुकथा की यही आकारगत शिल्प उसे अन्य विधाओं से कहीं अधिक पाठकीय आमंत्रण भेजती है। लघुकथा इस मायने में भी लघु है कि वह घाव गंभीर करती है। देखन में छोटे लगे-घाव करे गंभीर।

उसका अर्थशास्त्र बहुत ही अनुशासन की माँग करता है। ठीक उस तरह जिस तरह से मनमोहन सिंह का वित्तीय अनुशासन उन्हें एक दिन प्रधानमंत्री के आसंदी तक ले पहुँचाता है। एक भी शब्द यदि आप नाहक बापरते हैं तो समझिये कि यह आपमें मितव्ययिता के गुण नही है और आप में मितव्यतिता के गुण नहीं है तो बेहत्तर है कि लघुकथा को दिया जाने वाला समय आपको कथा या फिर ललित निबंध के लिए देना चाहिए जिसे आप-हम जैसे वाचाल रचनाकारों की शख्त जरूरत है। तो शब्दानुपयोग में लघुकथाकार को सखण्त और सचेत होना ही चाहिए। कुछ ही अतिरिक्त शब्द आपको लघुकथाकार के श्रेष्ठ पद से च्युत कर सकते हैं और कुछ ही सटीक, सार्थक और सारगर्भित शब्द आपको लघुकथाकार के रूप में स्थापित कर सकते हैं। कह सकते हैं कि अमिधा के बदले लक्षणा और व्यंजना की गांभीर्यता के प्रति कहीं ज्यादा सचेतता अपरिहार्य है लघुकथा लिखने के लिए। कहा गया है - बातन हाथी पाइये, बातन हाथिन पाँव। प्रकारांतर से कहा जा सकता है कि शब्दों के भीतर प्रवेश किये बिना, उसकी लंबाई, चौड़ाई और गहराई नापे बिना लघुकथा का क्षेत्रफल सिद्ध नहीं किया जा सकता है। लघुकथा दोहे, गजल की तरह ऐसी विधा है जिसमें प्रत्येक शब्दों की विश्वसनीयता दर्ज होती है। अन्य विधा को उठाकर देखिए - सैकड़ों और कहीं-कहीं तो हजारों शब्द अकारज जगह घेरे दिखाई देते हैं। किसी महानगर में बेजा कब्जा किये हुए बेघरवारों की तरह। लघुकथा साहित्य में ऐसी बसाहट है, जहाँ शब्दों का बेजाकब्जा की साफ और निहायत मनाही है।

शिल्प की सिद्धि कोई वैयाकरण नही कर सकता। शिल्प निहायत निजी मामला है। यही

रचनाकार का व्यक्तित्व भी है। जिस दिन हम शिल्प के वैरायटीज के बारे में अपनी अंतिम राय दे देंगे एक तरह से लघुकथा को परिसीमित करने का व्हीप भी जारी कर रहे होंगें। यह एक तरह से बंदीकरण का कार्य जैसा होगा। वैयाकरण दिशा दे सकते हैं। पर यह कतई जरूरी नहीं कि पथिक उसी दिशा में जाये। जो बताये गये मार्ग में चलता है वह जाने-पहचाने गंतव्य तक ही पहुँचता है। असाधारण रचनाकार वही होता है जो अक्सर बिना मार्गदर्शक के खुद मार्ग बनाता है। कदाचित् वही भविष्य में कुछ आगे के लिए गंतव्य-सा बन जाता है।

लघुकथा का आलोचक स्वयं लघुकथाकार को होना पड़ेगा। वह इसलिए कि जहाँ आप छपते हैं जरूरी नहीं कि वहाँ कमलेश्वर, रमेश बतरा, बलराम, जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी, सतीशराज पुष्करणा, डॉ. राजेन्द्र सोनी या सुकेश साहनी ही मिलें। वहाँ कई बार आप एक फीलर के रूप मे लिये जाते हैं। इसे लेकर आप मुगालते में मत रहिए कि वही लघुकथा का ज्ञाता है। उसे कई बार विधाओं के हिसाब से भी पेज को इंद्रधनुषी रंग में सजाना होता है। आपकी रचना मिली, बस्स, छप गई धड़ाधड़....। जिसे लघुकथाकार पत्र-पत्रिकाओं और पाठकों के लघुकथा की पैठ समझता है कहीं वह कचरा-लेखन का प्रोत्साहन तो नहीं... इस पर भी बारीक आत्मपरीक्षण की आवश्यकता अब भी बनी हुई है।

मैं यहाँ पर सुकेश साहनी के कुछ लघुकथाओं की ओर ध्यान ले जाना चाहूँगा (जो ई-मेल, इंटरनेट आदि पर केंद्रित और शसक्त लघुकथायें कही जा सकती हैं) जहाँ आप तकनीकी विषयों, प्रसंगों पर की ऐसी लघुकथाओं से रूबरू हो सकते हैं जिसकी कल्पना शायद ही प्रेमचंद कर सकते थे या दास्तोवस्की। तो कहने का आशय यही कि एक समर्पित लघुकथाकार को विषयवस्तु का संकट कभी भी नहीं रहेगा ।

तो चलिए सीधे लघुकथा के चरित्र पर गौर करते हैं। न अधिक शब्द। न अधिक छंद। न अधिक राग, न ही अधिक द्वेष। लघुकथा अधिक तटस्थ विधा है। लघुकथा सिंहावलोकन वाली विधा है। विहंगलावलोकनीय लेखन की संभावना से परहेज करने वाली विधा। यहाँ उड़ान की गुंजाइश नहीं है। लघुकथा को कथ्य और शिल्प के स्तर पर हम विकल्पहीन विधा के रूप में भी सिद्ध कर सकते हैं। इसके पीछे दो कारण हैं। एक तो यह कि लघुकथा यथार्थ का दर्पण है। वहाँ कल्पना या फैंटेसी के लिए कोई खास स्पेस नहीं है। और है तो भी उतना ही जिससे उसकी विश्वसनीयता अमर रहे। काल्पनिकता तो लघुकथा में उस तरह से होती है जैसे कि देह में साँसें। हम हरदम साँस लेते हैं किन्तु हमें उसका प्रत्यक्ष अहसास कम ही होता है।

कथ्यों का सही और सटीक चयन, तथ्यों का अनूठा प्रस्तुतिकरण, सारगर्भिता, स्पष्ट दृश्यांकन एक स्वस्थ लघुकथा के आधार हैं जिसका मर्म स्वयं-सिद्ध है। सतर्कता बस यही कि विषय-वस्तु की विश्वसनीयता संदेहास्पद न लगे। कथ्य का कालक्रम इतना अल्प हो कि वहाँ कथायी चरित्तर की अनुगूँजें न सुनाई दे। मन में छाप न छोड़ने वाले पात्रों के प्रति हमदर्दी से बचना एक अच्छे लघुकथाकार का गुण माना जाना चाहिए। यानी कि पात्र ऐसे हों जिनसे संघर्ष का पाठ मिल सके और उदात्तता का भी। लघुकथा का अंत विस्फोटक या मारक हो। पर इसी मारकता के नाम पर चमत्कारिक वाक्यों और उद्धरणों की प्रामाणिकता कहीं संदिग्ध न हो जाये इसकी गारंटी भी लघुकथाकार को लेनी होगी। जहाँ तक शीर्षक की बात है- वह ऐसा हो जैसे देह में सिर। सिर में ही मस्तिष्क, आँख, मुँह, कान, नाक आदि होते हैं जिनके बिना धड़ की कोई खास अहमियत नहीं। जाहिर है शीर्षक लघुकथा के समग्र व्यक्तित्व का सूत्र भी हो।

बहुधा यह भ्रम पैदा होता है कि लघुकथा में कथ्य और पात्र का औसतन चरित्र एक जैसा लगता है पर मुझे लगता है कि भविष्य में नये पात्रों का-संकट नहीं रहेगा। समय परिवर्तनशील है। यही परिवर्तनशीलता उसे नयी घटनाओं, नये पात्रों, नयी मन:स्थितियों, नयी दृष्टियों, नये कथ्यों, नये विषयों से समृद्ध बनायेगी। मैं यहाँ पर सुकेश साहनी के कुछ लघुकथाओं की ओर ध्यान ले जाना चाहूँगा (जो ई-मेल, इंटरनेट आदि पर केंद्रित और शसक्त लघुकथायें कही जा सकती हैं) जहाँ आप तकनीकी विषयों, प्रसंगों पर की ऐसी लघुकथाओं से रूबरू हो सकते हैं जिसकी कल्पना शायद ही प्रेमचंद कर सकते थे या दास्तोवस्की। तो कहने का आशय यही कि एक समर्पित लघुकथाकार को विषयवस्तु का संकट कभी भी नहीं रहेगा। हाँ, हमें अपनी दृष्टि को पारंपरिक विषयों के इमेज से बचाते हुए और अधिक बृहत्तर बनाना होगा। यूँ भी इक्कीसवीं सदी की गंभीर चुनौतियों में जिस तरह हम बाजार, वैश्वीकरण, उदारीकरण, अदृश्य उपनिवेशीकरण और उससे जुड़ी तकनीकियों को देख रहे हैं। कथित और आरोपित उत्तर आधुनिकता के विचारों के गंदे नाले में बहकर 'कुछ भी निश्चित नहीं' जैसे विचारों को स्वीकारने के लिए मनुष्य को बरगला रहे हैं यह जरूरी है कि वहाँ लघुकथाकार गंभीरता से प्रवेश कर सकता है। यहाँ वह नये समय में अपने सरोकारों को भी ढूँढ सकता है और लघुकथा की सिद्धि को भी चरितार्थ कर सकता है।

और हम ऐसा कर सके तो कोई दो मत नहीं कि लघुकथा कविता की तरह पाठक और समाज में अपनी विश्वसनीय सहकारिता दर्ज करा सकती है ।

जयप्रकाश मानस

हिन्दी-लघुकथाओं में बुजुर्ग पात्रों का चरित्र-चित्रण

डॉ. ध्रुब कुमार

यहाँ हम कतिपय ऐसी लघुकथाओं को लेकर उनके पात्रों की चर्चा एवं चित्रण करेंगे। यह चर्चा एवं चित्रण बुजुर्गो के प्रति हो रहे वर्तमान व्यवहार के सकारात्मक, नकारात्मक एवं अन्यान्य तरह के भी हो सकते हैं जिसे क्रमशः यहाँ प्रस्तुत करेंगे। कारण कभी-भी समाज में सब नकारात्मक नहीं होता और सभी सकारात्मक भी नहीं होता। इन दोनों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की प्रवृत्तियाँ भी समाज में देखने को मिलती है।

हमारे घर-परिवार में सदैव बुजुर्गों का सम्मान होता आया है, इसका कारण वे हमारे पिता, दादा, माँ, चाचा, चाची इत्यादि के अतिरिक्त जो खून के रिश्तों से भिन्न होते हैं वे भी हमारे घर-परिवार का अंग और सम्मान के योग्य बन जाते हैं। यों यह तो भारतीय संस्कार ही है कि हम अपने बड़ो का सम्मान करते हैं, किन्तु जो बुजुर्ग होते हैं वे और भी सम्मान के अधिकारी बन जाते हैं।

यदि हम पाँच-छः दशक पूर्व के समाज का अवलोकन करें तो हमारे परिवारों में संयुक्त-परिवार की सुन्दर परम्परा रही है कारण तब प्रायः लोग गाँव से जुड़े होते थे, किन्तु जैसे-जैसे पढ़-लिखकर युवा-वर्ग गाँव छोड़कर सरकारी गैर सरकारी नौकरी के विचार से शहर या अपने जिले से दूर-दूर शहरों और यहाँ तक कि विदेशों में जाकर अपनी जीविका चलाने लगा, वैसे-वैसे संयुक्त परिवार स्वाभाविक रूप से टूटकर बिखरने लगा और अपना-अपना निजि परिवार लेकर अपनी जीविका-स्थल पर रहने हेतु विवश होने लगा।

बढ़ते समय के साथ-साथ जैसे-जैसे हमारे समाज का नारी-वर्ग शिक्षित होने लगा और निजी परिवार को आर्थिक समृद्धि देने हेतु महिलाएँ भी पुरूषों के साथ - साथ कँधे - से -कँधा मिलाकर जीविकोपार्जन करने लगीं और आधुनिक समाज में अपना एक स्टेट्स बनाकर आधुनिकता के साथ कदम-ताल करने में पुरूषों यानी अपने-अपने पतियों का सहयोग करने लगी।

इस प्रकार धीरे-धीरे गाँव छूटने लगा तो संयुक्त परिवार भी टूटने लगा और बाहर जाकर रहने वाले दम्पत्तियों को निजि परिवार में आनंद एवं सुख मिलने लगा। इसमें महिलाओं को घर के काम-काज के दबाव तथा स्वतंत्रता से जीवन जीने में आनंद आने लगा और अब महिलाओं को सास का आदेश मानने तथा वृद्धों की सेवा करना अखरने लगा और यह प्रवृत्ति बढ़ती ही चली गयी जिसका वर्तमान चेहरा हम सब देख एवं महसूस कर रहे हैं।

निश्चित रूप से तत्कालीन समाज का सच साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में प्रत्यक्ष होने लगा और लघुकथाकार भी अपने समय के सच को अपनी लघुकथाओं के सृजन में अभिव्यक्ति देने में कभी पीछे नहीं रहे। वो सच सकारात्मक, नकारात्मक, मनोवैज्ञानिक अथवा अन्य किसी प्रकार का भी हो सकता है।

यहाँ हम कतिपय ऐसी ही लघुकथाओं को लेकर उनके पात्रों की चर्चा एवं चित्रण करेंगे। यह चर्चा एवं चित्रण बुजुर्गो के प्रति हो रहे वर्तमान व्यवहार के सकारात्मक, नकारात्मक एवं अन्यान्य तरह के भी हो सकते हैं। जिसे क्रमश: यहाँ प्रस्तुत करेंगे। कारण कभी-भी समाज में सब नकारात्मक नहीं होता और सभी सकारात्मक भी नहीं होता। इन दोनों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की प्रवृत्तियाँ भी समाज में देखने को मिलती है।

पहले हम सकारात्मक पक्ष को प्रत्यक्ष करती कतिपय श्रेष्ठ एवं चर्चित लघुकथाओं की क्रमश: चर्चा करेंगे। इस क्रम में सर्वप्रथम श्यामसुन्दर अग्रवाल की लघुकथा 'माँ का कमरा' देखें जिसमें लेखक ने बेटे को एक आदर्श पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। इस लघुकथा में माँ जब अपने बेटे के अनुरोध पर उसके पास शहर रहने लगती है तब उसकी पड़ोसन कहती है, ''अरी रहने दे शहर जाने को। शहर में बहू-बेटे के पास रहकर बहुत दुर्गति होती है।'' इससे माँ आशंकित तो होती है, किंतु फिर भी बेटे की जिद उस पर प्रभावी हो जाती है और फिर यह सोचकर 'जो होगा देखा जाएगा' साथ चली जाती है। घर पहुँचकर बेटा माँ को नौकर के हवाले कर, यह कहते हुए, '' एक जरूरी काम है माँ मुझे अभी जाना होगा''। चला जाता है। बहू अपने कार्यालय पहले ही जा चुकी होती है और बच्चे भी स्कूल चले गये होते हैं।

नौकर माँ का सामान एक बहुत ही बड़े सुसज्जित, तमाम सुख-सुविधाओं से सम्पन्न कमरे में रख देता है। माँ सोचती है, ''काश! उसे भी ऐसे कमरे में रहने का मौका मिलता।'' वह डरती-डरती बेड पर लेट जाती है, किंतु मन में एक आशंका उसे घेर लेती है कि कहीं उसे नींद आ जाए और बहू आकर उसे डाँटे, सोचकर वह उठ खड़ी होती है।

शाम को बेटे के लौटने पर बासन्ती (माँ) बोली, ''बेटा, मेरा सामान मेरे कमरे में रखवा देता। बेटा हैरान होते हुए कहता है, ''माँ, तेरा सामान तेरे कमरे में ही तो रखा है, नौकर ने।'' इस लघुकथा में माँ का मनोवैज्ञानिक चित्रण अपने शिखर पर नजर आता है। लेखक का उद्देश्य इस लघुकथा की बुजुर्ग पात्र माँ के चरित्र को स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेता है।

घ्यातव्य है कि चरित्र के मामले सभी बुजुर्ग एक-से नहीं होते स्थितियाँ-परिस्थितियाँ एवं उनका परिवेश उनके चरित्रों में भिन्नता ला देते हैं। पांक्तेय लघुकथाकार डॉ0 सतीशराज पुष्करणा ने यों तो अनेक ऐसी लघुकथाओं का सृजन किया है, जिनमें, विभिन्न प्रकार के वृद्धों का चरित्र-चित्रण बहुत की सटीक ढंग से किया गया है। किन्तु उनकी लघुकथा 'मन के अक्स' के नायक अक्षय का चित्रण देखते ही बनता है। इस रचना का नायक स्वयं में यह जानता है कि वह बूढ़ा हो गया है, किन्तु वह यह मानने को तैयार नहीं होता और फिल्मी नायकों की तरह वह दर्पण के समक्ष नहा-धोकर अपने को भाँति-भाँति ढंग से सजाता-सँवारता है। इस प्रकार पिता को सजते-सँवरते देख बेटा कहता है, ''कौन कहता है कि पापा बुजुर्ग हो रहे हैं? जब धमेन्द्र, जितेन्द्र आदि बुजुर्ग होकर भी अपने को बुजुर्ग नहीं मानते तो आप कैसे बुजुर्ग हो सकते हैं! '' यह सुनकर पत्नी मुस्कुरा देती है, उसकी मुस्कान उसमें आत्मविश्वास भर देती है और उसे लगता है वह बुजुर्ग नहीं है और वह किसी भी युवा से अधिक सुन्दर एवं स्मार्ट है।

लघुकथा को समर्पित पत्रिका के संपादक एवं चर्चित लघुकथाकार डॉ0 कमल चोपड़ा ने भी विविध विषयों को केन्द्र में रखकर अनेक-अनेक लघुकथाएँ लिखी है। बुजुगों को केन्द्र में रखकर भी उन्होंने अनेक लघुकथाएँ लिखी हैं, जिनमें 'संतान' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें एक ग्रामीण माँ मात्र दो स्वेटर भेजकर विरोधी बहू का हृदय जीत लेती है। बहू, सास द्वारा प्रेषित पत्र को पढ़ती है, जिसमें खैर.....खैरियत के बाद माँ ने लिखा था, ''मनीऑर्डर भेजने की क्या जरूरत थी, यहाँ हमारा गुजारा तो ठीक-ठाक चल ही रहा है। मुझे पैसे भेजने के बजाय तुम लोग ढंग की खुराक आदि खाया करो। कंजूसियाँ कर-करके अपने सेहत का सत्यानाश करने की जरूरत नहीं।'' पत्र पढ़कर बहू आत्मग्लानि से भर उठती है। बस्तुत: इस लघुकथा में एक वृद्ध आदर्श माँ का चित्रण लेखक ने बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है, जो प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय है।

बुजुर्गों की इसी भावना को ही चित्रित करती लघुकथा रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की 'ऊँचाई' है। इस लघुकथा में आदर्श बुजुर्ग पिता का चरित्र-चित्रण किया गया है जिसमें पिता के आने पर बहू-बेटे दोनों इस बात को लेकर आशंकित हो जाते हैं कि अब पिता न जाने कितने पैसों की माँग कर बैंठें, किन्तु उनकी गन्दी सोच के विरूद्ध जब खाना खा चुकने के पश्चात् पिता-पुत्र को अपने पास बुलकार कहते हैं-'', खेती के काम में घड़ी भर फुरर्सत नहीं मिलती है। इस बखत काम का जोर है। रात की गाड़ी से वापस जाऊँगा। तुम्हारी कोई चिट्ठी तक नहीं मिली। जब तुम परेशान होते हो, तभी ऐसा करते हो।'' और जेब से सौ-सौ के दस नोट निकालकर बेटे की तरफ बढ़ा देते हैं और कहते हैं,'' रख लो, तुम्हारे काम आएँगे। ढंग से खाया-पिया करो, बहू का ख्याल भी किया करो।'' यह सुनते ही बहू-बेटा दोनो आत्मग्लानि से भर उठते हैं। इस कथा में पिता के उदार एवं विराट् चरित्र का चित्रण बहुत ही सटीक शब्दों में किया गया है।

हिन्दी-लघुकथा में शायद ही कोई लघुकथाकार ऐसा होगा जिसने चाहे-अनचाहे कभी-न-कभी बुजुर्गों का चरित्र-चित्रण करती कोई-न-कोई लघुकथा न लिखी हो। ऐसे में राजेन्द्र

मोहन त्रिवेदी 'बन्धु' कृत लघुकथा 'सबक' महत्त्वपूर्ण है, जिसका बुजुर्ग नायक वर्तमान संतानों की नकारात्मक भूमिका से बेहद दुखित एवं पीड़ित है। ऐसे चिंतित देखकर उसका मित्र उसे कहता है-''बनवारी बाबू! आपकी स्थिति देखकर मेरी बन्द आँखे खुल गयी है.....अब रिटायर होने पर जो पैसा मिलेगा वह कलयुगी बहू-बेटों को नहीं, बैंक में जमा कर दूँगा।'' इस लघुकथा के बुजुर्ग नायक चरित्र से निहायत ही सीधा-साधा है, जो अपने बच्चों की मानसिकता का सही-सही अनुमान न ही लगा पाता है, अपितु उनके प्रति उपजे अपने मोह का सहज ही शिकार हो जाता है।

जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, सभी बुजुर्ग एक-से नहीं होते। सबका चरित्र एवं मन-मिजाज भिन्न-भिन्न होता है। कुछ तो ऐसे भी होते हैं जो बच्चों के मध्य में रहते हैं, उनसे खेलते हैं और स्वयं उनके साथ बच्चे ही बन जाते हैं। ऐसे ही सुकेश साहनी की एक लघुकथा 'विजेता' है। इसका नायक बच्चे से बातें करता हुआ, अपनी वृद्धावस्था पर भी सोचता रहता है, जबकि बच्चा उस बुजुर्ग की सोच से बेखबर रहता है, उसे तो बस बुजुर्ग के साथ खेलने की धुन सवार है। इधर बच्चा बुजुर्ग की आँखों पर पट्टी बाँध देता है। मगर बुजुर्ग तो अपने भावी जीवन के विषय में विचार करता हुआ स्वयं में खोया इस निष्कर्ष पर आता है कि व्यक्ति को अपने काम स्वयं करने चाहिए तभी व्यक्ति सुखी रह सकता है। उधर बच्चा कहता है, ''बाबा! तुम मुझे नहीं पकड़ पाये.....तुम हार गए.....तुम हार गए तालियाँ पीटता है, उधर बुजुर्ग अपने आत्मविश्वास से भरा अपने भावी जीवन में निश्चिंत हो जाता है। इस लघुकथा में बुजुर्ग का चरित्र एक आत्मविश्वासी बुजुर्ग का चरित्र है जो बच्चों से बहुत प्यार एवं लगाव भी रखता है।

इन चर्चित लघुकथाकारों के अतिरिक्त अन्य अनेक लघुकथाकारों ने इस विषय पर अनेक-अनेक लघुकथाएँ लिखीं हैं, किन्तु जिनकी लघुकथाएँ मैंने इस विषय पर पढ़ी हैं उनमें-सुदर्शन, भगीरथ, सतीश दुबे, श्याम सुन्दर व्यास, मधुदीप, नंदल हितैषी, सुरेन्द्र मंथन, पारस दासोत, पृथ्वी राज अरोड़ा, अंजना अनिल, कृष्णानंद कृष्ण, नरेन्द्र प्रसाद 'नवीन', डॉ0 मिथिलेशकुमारी मिश्र, रामकुमार आत्रेय, कृष्ण मनु, डॉ0 जगदीश राय कुलरियाँ, सीमा जैन, कल्पना भट्ट, संतोष सुपेकर, कालीचरण 'प्रेमी', डॉ0 पूरण सिंह, डॉ0 श्याम सुन्दर 'दीप्ति', डॉ0 सत्यवीर मानव, डॉ0 रामनिवास मानव, डॉ0 स्वर्ण किरण, चन्द्र भूषण सिंह 'चन्द्र', अमरनाथ चौधरी 'अब्ज', हरनाथ शर्मा, पद्युमन भल्ला, सुभाष नीरव, कमल कपूर, सुदर्शन रत्नाकर, विक्रम सोनी, सूर्यकान्त नागर, प्राप्त सिंह सोढ़ी, योगन्द शुक्ल, चित्रा मुद्गल, सुरेश शर्मा, डॉ0 राम कुमार घोटड़, मीरा जैन, मधु जैन, विभारानी श्रीवास्तव, नीलिमा शर्मा 'निविया', किशोर काबरा, घनश्याम अग्रवाल, आशा शैली, तारिक असलम 'तस्नीम' सिद्धेश्वर, साबिर हुसैन इत्यादि प्रमुख है।

लेख की सीमा देखते हुए इनमें से सभी की लघुकथाओं की चर्चा तो संभव नहीं है, किन्तु इनमें श्याम सुन्दर व्यास की लघुकथा 'संस्कार' इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि बुजुर्ग नायिका जो कि अपनी बहू के प्रति पूर्ण ममत्व रखती है अपने सास होने के रिश्ता को सार्थकता प्रदान करती है। अनेक बुजुर्ग ऐसे भी होते हैं जिनकी भूमिका रिश्तों एवं स्थितियों के अनुसार बदलती रहती है- इस बात को रेखांकित करती है, चित्रा मुद्गल की लघुकथा 'रिश्ता' तो लब्धप्रतिष्ठ कथाकार सुदर्शन ने

अपनी लघुकथा 'अपनी कमाई' में बुजुर्गों के सार्थक अनुभव की चर्चा की है कि कैसे बुजुर्ग अपने-अपने अनुभवों के आधार पर सही निर्णय तक सहज ही पहुँच जाते हैं।

अनेक बुजुर्ग ऐसे होते हैं जिन्हें यह पता ही नहीं चलता कि उनके बेटे-बहू किस स्वार्थ के वशीभूत होकर उनकी सेवा करते हैं। इस रहस्य को खोलती है शील कौशिक की लघुकथा 'हिसाब-किताब'! तात्पर्य यह है कि बुजुर्ग जैसे-जैसे वृद्धावस्था की सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं, वे प्राय: बच्चों जैसे सीधे-सीधे भोले हो जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि उनकी सेवा के बदले वस्तुत: उनका शोषण हो रहा है।

परिवार किसी भी वर्ग का हो, सभी में बुजुर्गों की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है, यह बात अलग है, इस बात को उनकी संतानी अपने लोभ के दायरे में घिरे होने के कारण भले ही न पहचान सकें, किन्तु यदि वह अपने लोभ के दायरे को छोड़कर एक संतान की तरह सोचने लगते हैं तो कुमार नरेन्द्र की लघुकथा 'अभूतपूर्व' की तरह स्थिति संस्कारमयी हो जाती है।

इन्हीं लघुकथाओं के विचित्र प्रकृति वाले बुजुर्ग नायकों के चरित्र-चित्रण करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रत्येक दृष्टिकोण से सम्मान एवं समुचित सेवा के अधिकारी हैं। कारण, उन्होंने अपना सारा जीवन न केवल अपने बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करने में किया, अपितु उनके हर दु:ख मुसीबत में उनका तन-मन से साथ दिया और उनके दर्द को अपने कँधों पर लेकर उन्हें उस दु:ख-दर्द से मुक्ति दिलायी। अत: अब सन्तान का यह दायित्व बनता है कि वह उनकी उसी प्रकार देखभाल करें।

इसी विषय पर केन्द्रित डॉ0 रामकुमार घोटड़ ने अपनी सढ़सठ लघुकथाओं का संग्रह 'बुजुर्ग जीवन-शैली की लघुकथाएँ' का प्रकाशन फरवरी 2019 में किया, जिसमें 'नई चिंता' 'घर लौट चलें', पिण्ड छोड़', गिरज कामले,' 'कामवाली बाई', 'आँसुओं की बाढ़' 'आपत्तिजनक', 'कलयुगी पूत', बिछोह, इत्यादि लघुकथाएँ अपने विषय के साथ पूरा-पूरा न्याय करती हैं। अब तो बुजुर्गों के चरित्र-चित्रण हेतु यदि और गहराई में जाकर समझना है तो वृद्धाश्रमों में आज के समय के सच को पूरी गंभीरता से देखा-परखा जा सकता है और उसके पश्चात् यदि लघुकथा-लेखक अपनी लघुकथाओं को अपने पूर्ण रचना-कौशल के साथ प्रस्तुत करें तो इस विषय पर यह विधा और अधिक अनेक-अनेक कालजयी लघुकथाएँ-जगत् को दे पाने में पूर्ण रूप से समर्थ हो सकती है।

डॉ. ध्रुब कुमार, पी. डी. लेन, महेन्द्रू, पटना–800 006 (बिहार)
मो. : 09304455515, ई–मेल : dhrub20@gmail.com

हिन्दी लघुकथा में 'पिता' पात्र का चरित्र-चित्रण

कल्पना भट्ट

पिता की महिमा हर काल में और अनेक विद्वानों ने की है, साहित्य में भी पिता को उत्तम दर्जा दिया गया है, हिन्दी-लघुकथा भी इस तथ्य का अपवाद नहीं। लघुकथा में पिता के पात्र को विविध आयाम प्राप्त हुए है, किसी में पिता के लिए आदर सत्कार है, तो कहीं पिता तिरस्कत और अपेक्षित होते नजर आता है। मेरे अल्प पठन में मुझे जो लघुकथाएँ प्राप्त हो पायी जिनमें पिता को मुख्य पात्र माना गया है, उसी पर मैं इस लेख के माध्यम से चर्चा करने का प्रयास कर रही हूँ।

कथा साहित्य की तीनो विधा, उपन्यास, कहानी और लघुकथा में पात्रों की अह्म भूमिका होती है, वो चाहे सजीव हों या निर्जीव पात्रों का चयन कथा के अनुसार ही होता है।

भारतीय संस्कृति में परिवार को महत्त्वपूर्ण माना गया है। गुरू, के बाद माता-पिता का स्थान होता है। जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, तब से सभ्यता और संस्कृति का विकास निरंतर होता आ रहा है, भारतीय सभ्यता में जहाँ गुरू को ईश्वर, माता को धरा का दर्जा दिया गया है, वहीं पिता को आकाश माना जाता है। माता-पिता के बिना परिवार की सरंचना होना असंभव ही होगा।

यह अलग बात है कि समय चक्र और काल के अनुसार भारतीय समाज ने कभी माता को परिवार का मुखिया माना, तो कभी पिता को। समाज में परिवर्तन होता रहा है, पर माता-पिता का महत्त्व और उनकी महिमा का गुणगान प्रत्येक भाषा के साहित्य में होता रहा है और आगे भी यूँही होता रहेगा। अब अगर पितृ-प्रधान समाज की बात करें तो : हिन्दी साहित्य कोष भाग-1 (पृष्ठ-393) के अनुसार : ''पितृ-प्रधान समाज का निर्माण मातृ सत्तात्मक व्यवस्था के बाद हुआ। काल के प्रभाव से नारी की शारीरिक अवस्था दुर्बल हो गयी और पुरूष धीरे-धीरे शक्ति-संचय करता गया और एक दिन वह परिवार का स्वामी बन बैठा। अब कुटुंब की व्यवस्था बदल गयी। उसका नेता पुरूष और पिता था और उसी का

नेतृत्व कुटुंब पर चलने लगा। जो स्थिति कुल-परिवार में पहले नारी या माता की रही थी, वही अब पुरूष या पिता की हुई।

पिता की महिमा अनेक आचार्यों ने अपने-अपने शब्दों में वर्णित की है:

पिता शब्द 'पा रक्षणे' धातु से निष्पन्न होता है।

'य: पाति या पिता' जो रक्षा करता है, वह पिता कहलाता है।

माता शिशु को 9 माह अपने गर्भ में रखती है, और उसके बाद उसको जन्म देती है, जैसे सृष्टि पेड़-पौधे और अन्य जीवों की रचयिता है वैसे ही एक शिशु का जन्म माँ के उदर से ही होता है पर इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि पिता का शिशु से को नाता नहीं, माँ को जननी मानाा गया है तो पिता को जनयिता कहा जाता है।

आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि जन्म देने वाला व्यक्ति ही पिता होता है लेकिन आचार्य चाणक्य के अनुसार पाँच प्रकार के पिता बनाए गए हैं-

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।

अन्नदाता भयत्रता पंचैचे पितर: स्म ता:॥

इस श्लोक का अर्थ है कि संसार में पाँच प्रकार के पिता बनाए गए है। जन्म देने वाला, शिक्षा देने वाला, यज्ञोपवित आदि संस्कार, अन्न देने वाला और भय से बचाने वाला भी पिता ही कहा गया है।

पिता की महिमा हर काल में और अनेक विद्वानों ने की है, साहित्य में भी पिता को उत्तम दर्जा दिया गया है, हिन्दी-लघुकथा भी इस तथ्य का अपवाद नहीं। लघुकथा में पिता के पात्र को विविध आयाम प्राप्त हुए है, किसी में पिता के लिए आदर सत्कार है, तो कहीं पिता तिरस्कृत और उपेक्षित होते नजर आता है। मेरे अल्प पठन में मुझे जो लघुकथाएँ प्राप्त हो पायी जिनमें पिता को मुख्य पात्र माना गया है, उसी पर मैं इस लेख के माध्यम से चर्चा करने का प्रयास कर रही हूँ।

सर्वप्रथम मैं रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' द्वारा लिखी गयी 'ऊंचाई' लघुकथा का उल्लेख करना चाहूँगी। महाभारत में पिता को आकाश से भी ऊँचा माना है, अर्थात पिता के हृदय-आकार में अपने पुत्र के लिए जो असीम प्यार होता है, वह अवर्णनीय है। 'ऊँचाई' लघुकथा एक ऐसे पिता-पुत्र की कथा है, पुत्र अपने पत्नी के साथ गाँव से दूर किसी अन्य स्थान पर रह रहा है। औरतों की संकीर्ण मानसिकता की झलक इस लघुकथा की प्रथम पंक्ति में है: ''पिताजी के अचानक आ धमकने से पत्नी तमतमा उठी, लगता है बूढ़े को पैसौं की जरूरत आ पड़ी है, वर्ना यहाँ कौन आने वाला था।'' भौतिकता के इस युग में माता-पिता भी बोझ लगने लगे हैं, जिस भूमि की संस्कृति 'वसुधैव कुटुंब' के लिए विश्व भर में जानी जाती थी, आज वहाँ स्वार्थ ने डेरा डाल लिया है, और मेरे-तेरे के साथ जीवन व्यापित हो रहा है, मेरा परिवार मेरा है और पति या पत्नी का परिवार 'तुम्हारा'। पहले समाज में हम माता-पिता के साथ रहते हैं, यह कहा जाता था, अब तो हम और

हम और सिर्फ हम, बाकी सब पराये और बोझ, पिता को बूढ़ा कहना एक औरत की संकीर्ण सोच दर्शा रही है। वहीं दूसरी ओर परिवार में पैसो को फाका पड़ा है यह भी उजागर होता प्रतीत हो रहा है, जब इंसान परेशान होता है तो वह सही और गलत की पहचान खो देता है और कई बार वह कुछ ऐसा बोल देता है जो अशोभनीय होता है।

पत्नी के इस उद्‌बोधन से पति को भी चिंता हो रही है, और वह भी यह सोच रहा है: 'पत्नी के इलाज के लिए पूरी दवाईयाँ नहीं खरीदी जा सकी। बाबूजी को भी आना था! बच्चे जब छोटे होते हैं माता-पिता उनकी हर जरूरत को पूरा करते है पर बुढ़ापे में वह बोझ कैसे बन जाते हैं, अपने ही जन्मदाता के लिए हम कितना गलत सोच लेते हैं।

''घर में बोझिल चुप्पी पसरी हुई थी।'' पति-पत्नी दोनों ही तनाव में थे, आगे क्या होगा पता नहीं था, बिन बुलाये आये थे पिताजी और न ही को सूचना ही दी थी उन्होंने अपने आगमन की।

भोजन करने के बाद पिताजी ने: ''सुनो!'' कहकर उसका ध्यान अपनी ओर खींचता और उन्होंने कहा, ''इस बखत काम का जोर है। रात की गाड़ी से वापस जाउँगा। तीन महीने से तुम्हारी को चिट्‌ठी तक नहीं मिली। जब परेशान होते हो, तभी ऐसा करते हो।''

माता-पिता अपने बच्चे के अनकहे को भी भली-भाँति समझ जाते हैं, वे अपने बच्चे की हर हरकत को पहचानते हैं, बेटे की चिट्‌ठी तक नहीं मिली, तब पिता को यह महसूस होता है कि हो न हो उनका बेटा परेशानी में हैं और वह अपने काम को छोड़कर अपने बेटे के पास चला आता है। यह पिता का प्यार और उनका अनुभव है, जो वह अपने बच्चों पर आया हुआ संकट महसूस कर लेता हैं, और वह अपने निजी कार्य को भी कुछ समय तक टाल देते हैं।

'उन्होंने जेब से सौ-सौ के दस नोट निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिए, ''रख लो! तुम्हारे काम आ जायेंगे।'' पिता अपने अपने बेटे को पैसे देते हैं, उनको यह आभास हो जाता है कि बेटे के हाथों में तंगी है। और साथ ही उनको लगता है कि कहीं उनके बेटे को यह न लगे कि पैसे देने से उसके माता-पिता को परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है सो उसको तसल्ली देते हुए कहते हैं, ''इस बार धान की फसल अच्छी हो गयी है। घर में कोई दिक्कत नहीं है''। बेटा अपने घर की खेती को छोड़ शहर में बस गया है, पिताजी उसके आश्वस्त कर रहे हैं कि गाँव के सब ठीक है, चिंता की कोई बात नहीं, और दूसरी तरफ यह भी है कि गाँव से पलायन करके लोग शहर की तरफ भाग तो आते हैं यह सोच कर कि शहर में आमदनी अच्छी होती है, पर हकीकत तो यह है कि गाँव हो या शहर, मुसीबत कही भी आ सकती है और कई बार छप्पर फाड़ कर आती है जैसा इस कथा के नायक के घर में आई।

पैसे लेते हुए वह कुछ नहीं बोल पाया, जैसे शब्द उसके हलक में फँसकर रह गए हों। जिस पिता के आगमन से वह और उसकी पत्नी चिड़चिड़ा रहे थे, इसके ठीक विपरीत पिताजी तो उनके बुरे वक्त तो दूर से ही सूंघ कर उनकी मदद करने हेतु उनके पास आये थे।

बेटा पैसा ले तो लेता है पर उसको याद आता है, ''बरसों पहले पिताजी मुझे स्कूल भेजने के लिए इसी तरह हथेली पर इकन्नी टिका दिया करते थे, परन्तु तब मेरी नजरे आज की तरह झुकी नहीं होती थीं।''

माता-पिता अपने बच्चों की अच्छे से अच्छी परवरिश करते है। और उनकी हर जरूरत को पूरा करने की कोशिश करते हैं, पर जब वे बूढ़े हो जाते हैं तो अपने ही बच्चों के लिए वे बोझ बन जाते हैं, पर कहते हैं न माता-पिता का ह्रदय विशाल होता हैं, सपूत-कपूत बन जाता है पर माता-पिता अपने कर्तव्यों का निर्वाह हर हाल में करते हैं, माँ जहाँ एक तरफ वात्सल्य की मूर्ति होती है, पिता बरगद का पेड़ होते हैं, वे अपने बच्चों को कभी परेशानी में नहीं देख सकते और यही सोच इस नायक के पिता की भी है। इस कथा का शीर्षक 'ऊंचाई' ने इस लघुकथा को और अधिक ऊंचाई दे दी है। एक पिता का अपने बेटे के लिए तन-मन-धन से न्योछावर होना, जब वह खुद इस अवस्था में हैं कि उनको सहारे की जरूरत है, उलट वह अपने बेटे को मदद करने ईश्वर का रूप धारण कर लेते हैं और अपने बेटे से यह भी कहते हैं की, ''खुद भी खाओ और बहू को भी खिलया-पिलाया करो।'' जो बहू उनके लिए गलत धारणा लिए हुए थी, उस बहू को भी पिताजी को चिंता थी। पिता के विशाल ह्रदय को दर्शाती यह एक उत्कष्ट लघुकथा है।

बलराम अग्रवाल द्वारा लिखी हुई एक लघुकथा 'कुण्डली' का उल्लेख भी यहाँ प्रासंगिक होगा, इस लघुकथा में एक पिता को अपने बेटी की शादी की चिंता सता रही है, वह अपनी बेटी के लिए सुयोग्य वर की तलाश कर रहें हैं, पर लड़के वाले कुण्डली से मिलान करना चाहते हैं, लड़की के पिता से जब पूछा जाता है, ''कुण्डली लाये हो?''

वह कहते हैं, ''हाँ जी, वह तो मैं हर समय ही अपने साथ लिए घूमता हूँ। लड़की के पिता पर यह कैसा दबाव कि उनको पता है बिना कुण्डली के रिश्ते की बात आगे नहीं बढ़ेगी, अक्सर लड़के वाले लड़की की कुण्डली अपने पास मँगवा लेते हैं और लड़की वालों को यह कह कर टाल देते है, 'जो भी होगा, पंडितजी से पूछकर आपको बता दिया जायेगा।'' ऐसे वे कई लड़कियों की कुण्डली वह एक साथ मंगा लेते है। यह लड़की वालों का एक तरह से शोषण ही किया जाता है, कुण्डली देखकर विवाह तय करना हमारी परंपरा रही है पर यही कुरीती भी बन गयी है।

पंडितजी को पैसे देकर अपनी पसंद के पात्र से रिश्ता जोड़ लिया जाता है और बाकी के पात्रें को किसी बहाने से इनकार कर दिया जाता है। एक लड़की के पिता की चिंता कि उसकी बेटी को सुयोग्य पात्र मिले, की तलाश में उनको बहुत से ऐसे अनुभव हो जाते हैं, और जब हर तरफ से निराशा दिखा देती है तो वह भी अपना पैंतरा लगाने से पीछे नहीं हटते और इस लघुकथा में दर्शाए नायक पिता की तरह कह देते हैं, ''जिस पण्डितजी से उसका मिलान कराना हो, या तो उन्हें यहाँ बुला लीजिये या मुझे उनके पास ले चलिए।'' नायक पिता यह जानता है कि पण्डितजी तो सिर्फ एक बहाना है।

लड़के के पिता और माता दोनों को उसकी यह बात एकदम अटपटी लगी। वे आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगे। लड़के के माता-पिता को ऐसी उम्मीद नहीं थी, कि लड़की के पिता उनके मन की बात को भाँप जायेंगे। इस लघुकथा का नायक पिता हर तरह से तैयार है और हर वार का पलटवार करने लिए खुद को चौकन्ना रखता है। नायक यह भी जानता है कि पंडितजी 'कुण्डली' देखने और मिलाने के माध्यम से सिर्फ अपना उल्लू सीधा करते हैं, लड़के के माता-पिता की मुख-मुद्रा को भाँपकर लड़की का पिता बोला, ''आप लोग अपनी कुण्डली इस मेज पर फैला लीजिये, मैं भी अपनी को आपके सामने रख लेता देता हूँ।'' यह कहकर लड़की का पिता यह दर्शाना चाह रहा है कि आज-कल बेटा हो या बेटी दोनों ही बराबर है, और समाज का अहम हिस्सा हैं, बेटे के माता-पिता होने का गुरूर और उनके संकीर्ण सोच की समाज में अब कोई दरकार नहीं है और समय परिवर्तन का आ गया है, वह समय गया जब एक बेटी के पिता को झुकना पड़ता था, लड़के वालों के आगे। बेटी की शादी की चिंता अपनी जगह है पर इसके लिए वह किसी भी कीमत पर लड़के वालों से कम नहीं होते। लड़की के पिता का स्वाभिमान और उनका इस तरह से पुरानी चली आ रही परिपाटी को नकार देना यह सिद्ध करता है की नायक पिता अपनी तरफ से कहीं भी कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते।

'इतना कहकर उसने अपनी जेब में हाथ डाला और बिटिया के विवाह पर खर्च की जाने वाली रकम लिखा कागज का एक पुर्जा सोफे पर कुण्डली मारे बैठे उस दम्पति की ओर बढ़ा दिया।'

लड़की के पिता को यह आभास हो जाता है हो न हो लड़के के माता-पिता लड़की के पिता की हैसियत जानने के इच्छुक हैं और वह यह जानना चाहते हैं कि वह अपनी बेटी के लिए कितना खर्च कर सकते हैं। यह दहेज प्रथा को बेशक बढ़ावा देती हुई रचना है पर समाज में दहेज प्रथा की कुरीति पर एक करार चांटा भी है, दहेज लोभी किस तरह से एक बेटी के बाप को विवश कर देते हैं, और दहेज रूपी अजगर समाज में आज भी खुले-आम घूमता नजर आता है। पिता के लिए अपनी बेटी के विवाह का दायित्व वह पूरा करना अपना फर्ज समझता है जिसके लिए वह हर हद पार कर जाता है।

'सौदा नन्हीं श्वासों का' कृष्णा भटनागर द्वारा लिखी एक लघुकथा का उल्लेख यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। इस लघुकथा में एक युगल एक डॉक्टर के क्लिनिक में जाते हैं, जिसमें शिशु-जन्म की पूर्ण व्यवस्था थी। डॉक्टर साहिबा अपनी कर्तव्यनिष्ठता तथा ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध थी।

पतिदेव बहुत व्यग्र थे, बोले, ''डॉक्टर सहिब! हमें लड़की नहीं चाहिए, कृपया इसे निकाल दीजिये।'' हमारे समाज में जहाँ औरत को देवी का दर्जा प्राप्त है, नदी को माँ का रूप मान उसकी पूजा की जाती है, वहीं दूसरी तरफ घर में बेटी का जन्म होना एक अभिशाप माना जाता है, पुरूष वर्ग में संवेदना जैसे लुप्त ही हो गयी है, उनके लिए भ्रूण हत्या जैसे कुकर्म को करने में कोई झिझक नहीं होती, वे भूल जाते है कि उनकी पत्नी के गर्भ में पल रहे बच्चे में उनका भी अंश है,

पुरूष प्रधान समाज में बेटे से वंश चलेगा अब धीरे-धीरे बदल रही है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भ्रूण हत्या से समाज को मुक्ति मिल गयी है।

इस लघुकथा का नायक पति भी यह नहीं चाहता कि घर में प्रथम बेटी हो। आम घरों में यह देखा जाता है कि पत्नी को पति की बात माननी पड़ती है, भले ही समय बदल रहा है, स्त्री अब अपने अधिकारों के लिए लड़ती हुई दिखाई दे रही है, नारी-विमर्श की बातें होती हैं, नारी खुद को सबल बना रही है, फिर भी समाज में चल रही भ्रूण हत्या को पूरी तरह से नष्ट नहीं कर पाया है यह समाज।

जब डॉक्टर को यह पता चलता है कि यह प्रथम बच्चा है वह क्रोधित हो जाती है पर खुद पर विश्वास करती है और वह पति को समझाने की कोशिश करती है, वह भली-भांति जानती है कि कोई भी स्त्री अपने गर्भ को गिराने के लिए एकदम से तैयार नहीं होती, वह पत्नी को ओर देखती है और कहती है, ''आप भी किसी की पुत्री हैं। आपके पति भी एक स्त्री के ही पुत्र हैं, फिर ऐसा अन्याय क्यों? स्त्री जाति का इतना अनादर क्यों,'' यह सत्य है कि बिना स्त्री के किसी भी जीव का जन्म संभव नहीं, एक शिशु के जन्म के लिए पुरूष और स्त्री दोनों की ही आवश्यकता होती है, हर को यही सोचने लगे कि लड़की का जन्म नहीं होना चाहिए तो सृष्टि आगे कैसे बढ़ेगी? भ्रूण हत्या से विनाश ही होगा। एक स्त्री में वात्सल्य का भाव होना स्वाभाविक होता है, वात्सल्य का भाव पुरूष में भी होता है, पर पुरूष-प्रधान समाज में कभी-कभी पुरूष का अहम आड़े आ जाता है, और समाज में बेटी को बोझ समझने वाले लोगों के तानो से बचने के लिए, या किसी मित्र के मजाक से बचने के लिए पुरूष ऐसा कृत्य करवाते हैं।

जब डॉक्टर इस युगल को समझा रही थी, पति महोदय मूक बन उनकी ओर ताक रहे थे। शायद उन्हें यथार्थ के दर्शन हो गए थे। किसी भी पुरूष को पिता बनने के लिए एक स्त्री की जरूरत पड़ती है, यह एक पुरूष क्यों नहीं सोचता, पर इस लघुकथा के नायक पति को जब इस बात का एहसास हो जाता है तो वह अपनी पत्नी के साथ नि:शब्द क्लिनिक से बाहर आ गया। ऐसा नहीं कि पुरूष के अंदर संवेदना नहीं होती, पर कई बार उसपर पर्दा लग जाता है, अगर उनको कोई सही से समझाने वाला हो और उनके अंदर कोमल भावनाओं को जगाने वाला हो, वह अपने अहम को अलग रख दें, तो परिवार में खुशहाली आने को कोई नहीं रोक सकता। सौदा नन्ही श्वासों का शीर्षक इस लघुकथा के लिए सही साबित हो रहा है, इस लघुकथा के माध्यम से रचनाकार ने ऐसे नायक पति को जो खुद में सिर्फ एक पुरूष को देख रहा है और स्त्री के लिए उनके मन में कोई दया नहीं, ऐसे इंसान में एक पिता की आत्मा को जगा रही है और पिता को अपने दायित्व का बोध हो जाता है। यह लघुकथा का नायक पति 'पिता हमारे जीवन में बहुत महत्त्व रखते हैं पिता न होते तो शायद मेरा कोई अस्त्वि ही न होता।' इस कथन को सच साबित करता हुआ प्रतीत हो रहा है।

पिता सूर्य की तरह गर्म होते हैं, पर परिवार के लिए खुद तपकर परिवार के उजाला भर देते है, पर ऐसे पिता की पीड़ा बच्चे कब समझ पाते हैं! पिता 'अगर बीमार हों और उनका आखरी समय निकट हो तब बच्चे अपना निजी स्वार्थ देखते हैं और अपने पिता के लिए उनका प्यार उस

स्वार्थ पूर्ति के लिए हो जाता है। ऐसी की एक लघुकथा सुभाष नीरव द्वारा लिखी गयी है जिसका शीर्षक 'अपने-अपने हेतु' हैं। इस लघुकथा में बीमार पिता के लिए डॉक्टर को बुलाया जाता है और घर के सभी सदस्य एक-एक करके गुजारिश करते हैं, ''डॉक्टर साहब, जैसे भी हो, इन्हें बचा लीजिये।'' डॉक्टर उनकी बातों से भावुक हो जाता है, 'कौन कहता है मानव-मूल्यों का ह्रास हो चुका है। क्या रखा है इस साठ-सत्तर साल के सूखे ढाँचे में, फिर भी हर को यही चाहता है की बूढ़ा मरे नहीं।' यह सोचकर वह तन्मयता से रोगी के परीक्षण में जुट गया।

धीरे-धीरे परतें खुलती हैं जब बड़ी बहू अपने पति से कहती है कि इस उम्र में इलाज करवाने से पैसा खराब करना बेकार ही है। तब उसका पति और बीमार पिता का बड़ा बेटा यह कहता है, ''चुप्प बदजात! बूढ़ा मर गया तो बाजार की सारी उधारी डूब जायेगी।'' पिता से ज्यादा इस बेटे को उधारी डूबने की चिंता सता रही है।

मंझला बेटा अपने पत्नी से कहता है, 'अच्छा हो बूढ़ा साल-छः महीने और निकाल दे और अपने हाथे से ही बँटवारा कर जाए, नहीं तो नकदी बड़ा वाला ही दबाकर बैठ जायेगा समझी!''

और तीसरा और सबसे छोटा बेटा सोच रहा था कि पिताजी को मर जाने देना चाहिए। निष्क्रिय नकारा होकर पड़े रहे तो उनकी और भी दुर्गति होगी। और उनके जाने के बाद घर में और किसी की क्या मजाल जो उसके शादी-ब्याह के मामले में टाँग अड़ाये।

घर में सब प्रार्थना कर रहे थे। इस अंतिम वाक्य ने एक पिता के लिए अपने की बच्चों की स्वार्थ-भरी भावना उजागर कर रही थी।

ऐसा ही एक लघुकथा जगदीश कश्यप लिखित **'ताड़ वक्ष की छाया'** का उल्लेख अनिवार्य है। पिता ताड़ जैसे होते हैं, मजबूत और सक्षम हर तूफान से टकरा जाते हैं पर परिवार को सुरक्षित रखने के लिए अग्रसर रहते है और परिवार की सुरक्षा को वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं, ऐसे ताड़ रूपी पिता का अपमान उन्हीं के बच्चों के सामने होता है तब वह किस हद तक पीड़ित और असहाय महसूस करता है, इसी पृष्ठभूमि को लेकर यह लघुकथा लिखी गयी है।

कॉन्वेंट में पढ़ रहे बच्चे जो हर काम समय पर करते हैं आज देर रात तक जाग रहे हैं क्योंकि उनके पापा घर नहीं लौटे हैं। वे आपस में बात कर रहे हैं, ''बेबी, ये कॉट रेड हैंडेड क्या है? वो सामनेवाली कोठी में मेरा क्लासमेट अनु कह रहा था, ''हमारे पापा किसी से दस हजार रूपये ले रहे थे, आई मीन टेन थाउजेंड रूपीस।

बच्चे महसूस होते हैं, उनको दुनियादारी का ज्ञान नहीं होता, कई चीजे उनके लिए नयी होती हैं और वे उन सब को जानने के लिए उत्सुक होते हैं।

दूसरा बच्चा कहता है, ''अरे पापा को कुछ नहीं होगा।'' वह बताता है, मम्मी स्टेनो अंकल को लेकर अपने ब्रदर के पास गयी है। मम्मी कहती है कि मिनिस्टर उनकी बात मानते हैं।

पिता ने रिश्वत ली थी, बच्चों इस बात से अनजान थे, पत्नी अपने भाई के पास जाती है जो एक मिनिस्टर से परिचित था, जब वह लौटकर घर आती है, अपने पति से कहती है, 'अगर मेरा भाई बीच में नहीं पड़ता तो वह मिनिस्टर का बच्चा कब मानने वाला था। तुम्हारा एज-पर-लॉ हम सबको ले डूबेगा।''

स्टेनो ऊपर देखता है तो बच्चे वहीं खड़े उनकी बातों को सुन रहे है, वह अपनी मैडम से कहता है ऊपर देखने को माँ बच्चों को डाँट कर सो जाने को कहती है, पर इस बीच बच्चे उनकी पापा की ओर देखते हैं जिनकी ऐसी अपमानित मुस्कराहट पहली बार देखी थी। पापा का अपमान खुद उनकी मम्मी द्वारा हुआ था, पिता की पीड़ा बच्चों को महसूस हो गयी और वह ताड़ जैसा पिता अपने ही बच्चों के सामने खुद को असहाय महसूस करता है,

पिता मार्गदर्शक भी होता है, वह अपने बच्चों के लिए को भी कार्य करने को तैयार हो जाता है, वह कहीं भी रहें, पर उनका घ्यान अपने बच्चों की गतिविधियों पर भी रहता है, पिता का प्रेम अंतरात्मा से होता है, ऊपर से सख्त दिखने वाला पिता अंदर से कोमल ह्रदय का होता है।

यहॉ में डॉ. सतीशराज पुष्करणा जी की लघुकथा **'उजाले की ओर'** का उल्लेख करना चाहूँगी। इस कथानक के नायक पिता को ज्ञात हो जाता है कि उनका छोटा बेटा दिनेश छुप-छुपकर सिगरेट पीता है, वह जब घर आते हैं तब अपने बड़े बेटे महेश को आवाज लगाते हैं, महेश लपक कर पिताजी के पास आ जाता है, 'जी पिताजी! कुछ कहा आपने।'' इस घर में बड़ो का आदार सम्मान के संस्कार दिखाई दे रहे हैं। ये ही हमारी संस्कृति और सभ्यता है कि बड़ों की एक आवाज में उनको सुने।

अपनी जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर उसमें से एक सिगरेट अपने बड़े बेटे की ओर बढ़ाते हुए पिता ने कहा, 'बेटे महेश! लो... पियो। पिता का यह आदेश महेश को चौंका देता है, उसको अभास हो जाता है जरूर को गड़बड़ हैं, अव्वल तो पिताजी ने पहले कभी सिगरेट पी नहीं, और आज तो वे इसको घर ले लाये हैं, उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहता और वह पूछता है, ''क्या!... सिगरेट.... पिताजी यह क्या है?'' वह जतलाता है कि उसके पिता जी को यह पता है कि वह भी सिगरेट नहीं पीता और पिताजी ने भी पहले कभी नहीं पी, फिर आज ऐसा क्या हो गया है?

दु:खी पर दृढ़ता से वे अपने बड़े महेश से कहते हैं, ''बेटे, जब घर के छोटे सिगरेट पीने लगे, तो हमें चाहिए कि हम उनके सामने सिगरेट पीकर उनके 'स्वास्थ्यवर्धक टोनिक' को स्वतंत्रता से पीने की अनुमति प्रदान कर दें। ताकि उन्हें कभी छुपकर न पीनी पड़े।'' बच्चे जब गलत राह पर चलने लगते हैं, घर वालों का कर्त्तव्य है कि भूले हुए राही को सही दिशा दिखा जाए। यहाँ भी यही हुआ है और दुखी मन से ही सही पर पिता को सिगरेट घर में लानी पड़ी, बच्चों की बुरी लत घर वालों को परेशान कर देती है, बच्चे अपने घर के संस्कारों को सड़क पर ले जाते हैं पर वह यह भूल जाते हैं कि उनके घर वालों को कभी न कभी इस बात का ज्ञात होगा तब उनके दिल पर क्या बीतेगी।

दिनेश जब अपने बड़े भाई और पिता के बीच हो रहे वार्तालाप को सुनाता है तब उसको ग्लानि होती है, कहा जाता है कि बच्चे को प्रथम संस्कार घर से ही मिलते हैं, जिस घर में अच्छे संस्कार के बीज बोये जाते हैं, उस घर के बच्चे को सही रास्ते पर लाने के लिए पिता की यह युक्ति सफल होती है, और दिनेश कहता है , ''पिताजी! मुझे क्षमा कर दीजिये। आज के बाद आपको दुबारा सिगरेट नहीं छूनी पड़ेगी।''

पिता बच्चों के सच्चे दोस्त होते हैं, बच्चे भले इस बात को भूल जाते हैं पर पिता के नाते वे अपने दोस्त को गलत राह पर चलने से रोकने और उसको सही राह दिखाने के लिए उसकी मदद करते हैं और बच्चों को कर्तव्यबोध करवाने का प्रयास करते हैं। पिता का दर्द और उनका प्यार माँ से कहीं कमतर नहीं होता। माँ की जगह भले वे कई बार नहीं ले पाते पर इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि उनको अपने बच्चों के अच्छे बुरे की फिक्र नहीं होती।

आपकी लिखी हुई कुछ और लघुकथाएँ भी पढ़ने में आई जैसे 'डर' जिसमें बेटा उनके घर में पल रहे कुत्ते के बारे में कहता है कि बूढ़ा हो जाने की वजह से अब उसको पालना बेकार है। पिता को अपने भविष्य की चिंता हो जाती है और वह डर जाता है। यह सोच कर कि उसने भी अपने माँ-बाप को बूढ़े होने पर गाँव भेज दिया था।

किसी भी व्यक्ति को यह घ्यान रखना चाहिए कि वह जब किसी का पिता बनता है उसके पहले वह किसी का बेटा भी है, और बीज बोयेंगे वैसी ही फसल मिलेगी, अपने पिता को तिरस्कार और अपेक्षा करते वक्त यह क्यों भूल जाता है व्यक्ति की वह भी कभी बूढ़ा होगा।

'बँटवारे का अधिकार' श्याम सुन्दर अग्रवाल जी के द्वारा लिखी गयी इस लघुकथा में पिता के दृढ़ और सशक्त व्यक्तित्व को दर्शाया गया है, पिता ताउम्र अपने बच्चों की परवरिश में अपने जीवन की आहुति देता है, और बच्चे जब बड़े हो जाते है तो वह भूल जाते हैं, की बाप तो आखिर बाप ही होता है। जब पिता घर बनवाते हैं तो वे यह सोचकर बनवाते हैं कि आगे उनके बच्चों को ही काम आएगा, पर बच्चे जब इस बात को भूलकर घर के स्वामी होने का दावा करते हैं तो पिता को अपना निजी अधिकार का बोध करवाना पड़ जाता है, इस लघुकथा के नायक पिता ने भी कुछ ऐसा ही ठोस निर्णय सुनाया। दो भाइयों का परिवार तीन कमरों के मकान में रहते हैं, नित्य होने वाले क्लेश से दोनों भाई किराए के मकान में रहने चले जाते हैं। एक दिन दोनों भाई माता-पिता के पास पहुँच जाते हैं और बड़ा भाई कहता है, '' पिताजी, हमने फैसला किया है कि इस मकान को बेचकर शहर के बाहरी भाग में दो मकान खरीद लेंगे। आप मेरे साथ रहेंगे तथा माँ छोटे के पास....।'' जीवन का अधिकाँश समय बच्चों की परवरिश में चला जाता है, बुढापे में ही अपने साथी के साथ रहने का असली सुख मिलता है। ऐसे में बच्चों के द्वारा 'गर ऐसा सोचा जाए तो माता-पिता को पूरा अधिकार है वे अपना निर्णय सुनाये और यही इस लघुकथा के नायक पिता ने किया, वह कुछ देर खामोश हो जाते हैं और बेटे के पूछने पर वह कहते है, '' याद करने की कोशिश कर रहा हूँ, कि यह मकान किसने बनाया है?'' बेटा कहता है, ''मकान तो आपने ही बनवाया होगा पिताजी।''

फिर वह बेटे से पूछते है कि उनकी माँ को इस घर में कौन लेकर आया?पिता के ऐसे प्रश्नों का तात्पर्य न समझते हुए बेटा कहता है, ''पिताजी, आप तो मजाक के मूड में लगते है''।

पिताजी कहते हैं जब घर भी मेरा है और माँ को भी जब वे ही लेकर आये और उनकी पेंशन से जब दोनों का जीवन ज्ञापन हो रहा है फिर उनको अलग करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया?

दोनों बेटों को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। इस आखिरी पंक्ति से यह प्रतीत होता है की पिता बच्चों को छत देते हैं तो यह अधिकार भी उनका ही है कि वे अपने जीवन को किस तरह से जियें बच्चों का कोई अधिकार नहीं बनता कि वे अपने स्वार्थ के लिए बुढ़ापे में अपने माता-पिता के अधिकारों को नजर अंदाज करें।

पिता एक शब्द नहीं अपितु संसार का एक सच है, समाज का एक ऐसा सच को परिवार के लिए अहम होता है। समाज में जहाँ एक तरफ बड़ों का सम्मान होता है वहीं दूसरी तरफ उनका तिरस्कार भी हो रहा है, पहले जो सुयुक्त कुटुंब का परिवेश हुआ करता है, आज एकल परिवार ने उसकी जगह ले ली है और बूढ़े माता-पिता की उपेक्षा की जाती है, और उनकी छोटी-बड़ी इच्छाओं को नजर अंदाज कर दिया जाता हैं। उम्र के आखिरी पड़ाव में जब एक व्यक्ति को परिवार की सब से ज्यादा जरूरत होती है, ऐसे समय में 'गर उनके मन में असुरक्षा की भावना पनपती है तो वह खुद को असहाय समझ लेते है और जीवन उनके लिए बोझ बन जाता है। ऐसी ही एक लघुकथा इच्छा' कमल चोपड़ा जी द्वारा लिखी हुई, का उल्लेख करना चाहूंगी।

अपने ही बेटे-बहू के उपेक्षित व्यवहार से वे टूट जाते है और मृत्यु के आने के पहले ही खुद को मृत समझने लगते हैं पर चूँकि साँसे चलती है तो इच्छाओं से मुक्ति नहीं मिल पाती और उनकी अपेक्षा होती है कि उनकी इच्छा पूर्ण भी हो, उसके लिए वे प्रयासरत तो रहते हैं परन्तु कई बार चालाकी से उनको टाल दिया जाता है।

इस लघुकथा में एक ससुर की इच्छा गाजर का हलवा खाने की होती है और वह डरते-डरते अपनी बहू से कहते हैं, ''कहो तो गाजरें लेता आऊँ, मुन्ने के लिए गाजर का हलवा बना देना, सेहत के लिए अच्छा होता है।'' अपनी इच्छा को जाहिर नहीं होने देते, इस डर से क्या होगा कि बहू ने इनकार कर दिया तो! और होता भी ऐसा ही है, बहू कहती है, ''नहीं बाबूजी, कौन इतनी मेहनत करें?''

वह मन मसोसकर रह जाते है, पर उनकी प्रबल इच्छा की पूर्ति के लिए वह एक बार और प्रयास करना चाहते हैं और इसके लिए जब अपने पोते को पार्क में घुमाने ले जाते हैं तब कहते हैं, ''पप्पू-पप्पू तू घर जाकर न अपनी मम्मी से कहियो कि गाजर का हलवा बनाओ, तूने कभी गाजर का हलवा खाया है?'' बड़ो को तो एक बार टाला जा सकता है पर बच्चे की इच्छा की पूर्ति हर माँ करती है और इसी बात को घ्यान में रखते हुए वे अपने पोते के माघ्यम से करवाना चाहते हैं।

पर जब पोता कहता है, ''हाँ आँ... मैंने तो कल रात को ही खाया था। पापा ना, हलवा की दुकान से इतना सारा लेकर आये थे। मैंने, पापा ने और मम्मी ने खाया।'' तड़पकर रह गए थे वे।

उनके इस तरह से बेकद्री को वे सही नहीं पाते हैं। वे अपनी बेबसी पर दुखी होते हैं, और ज्यों-ज्यों वे अपनी दयनीयता के बारे में सोच रहे थे, हलवा खाने की इच्छा मरती जा रही थी।

घर की सब्जी लाने के लिए अक्सर उनसे ही कहा जाता था, जब बहु को अपने ससुर जी की इच्छा का एहसास हुआ तो वह पैसे देते हुए कहती है,''बाबूजी, आज दो किलो गाजरें लेते आना, हलवा बना लेंगे।''

पहले बेकद्री होने के बाद वहू का इस प्रकार से बोलना उनके एक और चोट थी। छोटे बच्चों की तरह इठलाते हुए उन्होंने कहा, ''बूढ़ा हो गया हूँ, मुझे हलवा पचेगा नहीं। मैं तो नहीं खाऊंगा।''

बूढ़े और बच्चे एक समान हो जाते हैं, बच्चे की तरह बुजुर्गों का मन भी चंचल हो जाता है परन्तु उनका अपना स्वाभिमान होता है।

इसी श्रंखला को आगे बढ़ाते हुए अब मैं सुकेश साहनी जी की लघुकथा 'बैल' का उल्लेख करना चाहूंगी, पिता के लिए यही सोचा जाता है कि वे पालनहार होते हैं और अपने बच्चों के भविष्य बनाने में उनकी सहायता करते हैं, उनको राह दिखाते हैं, पिता अपने बच्चों का हित चाहते हैं और उनकी क्षमता बढ़े इसके लिए वे प्रयासरत रहते हैं और समय-समय पर उनका मार्गदर्शन करते हैं। 'गर फसल को लिया जाये तो पिता खेत को जोतने के लिए खुद भी बैल बन जीवन रूपी खेत को जोतते हैं और अपने बच्चों को भी बैल की तरह मजबूत बनाने की कोशिश करते हैं, यहाँ मैं कोल्हू का बैल बनाने की बात नहीं कर रही है, खेत जोतने में बैलो की मुख्य भूमिका हुआ करती थी, को भी मेहनत का कार्य हो, गाड़ी जोतना या खेत जोतना और तेल निकालने का कार्य हो, बैल को ही जोता जाता था, तेल निकालने में बैलों को अधिक परिश्रम करना पड़ता था, पर क्योंकि उनमें यह क्षमता होती है, इसीलिए इनका इस इस्तेमाल होता था। पर इस लघुकथा में एक पिता अपने बेटे को कोल्हू का बैल बनाने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं, हर बच्चे की अपनी क्षमता होती है और यह कुदरती होता है। जिस तरह से जीवन को खेत माना जा सकता है, उसी तरह से एक बच्चे को उर्वरा भूमि का प्रतिक माना जा सकता है, किसी भी भूमि को उर्वरा बनाने के लिए उसको आवश्यक पोषक तत्व समय-समय पर उपलब्ध करवाए जाते हैं, तभी उसपर अच्छी फसल संभव हो पाती है, दूसरी तरफ 'गर भूमि पहले से ही उर्वरा हो और फिर भी उसको और पोषक बनाने का प्रयास किया जाता है तो नतीजा उल्टा हो जाता है और उर्वरा भूमि, अति कमजोर पड़ जाती है वो कहते हैं न किसी भी चीज की अधिकता नुकसान करती है ठीक इस तरह से जब बालक छोटा होता है, उसका दिमाग उर्वर होता है, पोषण देना आवश्यक होता है, पर पोषण की मात्रा अधिक होने की वजह से बालक अपनी मौजूदा क्षमता को खो देता है

और वह कोल्हू के बैल बनता प्रतीत होता है। ऐसी ही पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह लघुकथा एक ऐसे पिता का चित्रण है जिसका बेटा अपनी क्षमता अनुसार पढ़ रहा है, पर पिता चाहता है कि वह जल्दी से अंग्रेजी सीख जाए, और दूसरों के बच्चों से अपने बच्चे की तुलना करता है और अपने बच्चे को कमतर आँक कर उसपर पढाई का बोझ डालने का प्रयास करता है और पढ़ाई में सुधार आये इस सोच से वह बच्चे को डरा-घमका कर पढ़ाने का प्रयास करता है, जिसका नतीजा यह निकलता है कि पहले जो बच्चा सही सही बोलने का प्रयास कर रहा था, डर के मारे उसकी जुबान पहले से ज्यादा लडखडा जाती है,

पत्नी के शिकायत करने पर पिता अपने बेटे मिक्की को बुलाते हैं।

वह किसी अपराधी की भाँति अपने पिता के पास आ खड़ा हुआ।

''हाऊ इज फूड गुड फॉर अस?जवाब दो, बोलो!''

''इट मेक्स अस स्ट्रोंग, एक्टिव एंड हेल्प्स अस टू....टू....टूऊ....ऊ....''

बच्चे का डर कि पिता उससे नाराज होंगे और उसको सजा मिलेगी, यह बालमन का डर उसको कमजोर कर देता है। बेटे के यूँ हलकाने की वजह से पिता उसको आँख दिखाते हैं, बच्चा और सहम जाता है और जब पिता उसके गालों पर जड़ता हुआ दहाड़ा, ''मैं आज तुम्हें छोडूँगा नहीं. ...'' उस बच्चे के मुँह से पहले से भी छोटा और गलत उत्तर प्राप्त होता है, ''फूड स्ट्रोंग अस...''

''क्या?'' वह मिक्की को बालों से झकझोड़ते हुए चीखा।

पापा! प्लीज, मारो नहीं....अभी बताता हूँ....बताता हूँ....स्ट्रोंग...फूड....अस....इट....हाऊ.....इज'' वह फूट-फूटकर रोने लगा।

एक बच्चा अपने माता-पिता से प्रेम करता है और प्रेम चाहता है, प्रेम जब डर के रूप में सामने आता है तो वह असहज और असुरक्षित महसूस करता है, जिसकी वजह से उसके बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसके अंदर की उर्वरा शक्ति उससे दूर होती प्रतीत होने लगती है और वह अपनी शक्ति खो देता है। पिता के ऊँगली पकड़ कर बच्चा चलना सीखता है, ऐसे में 'गर पिता क्रूरता करता है तो कोमल मन बिखर कर चूर-चूर हो जाता है। पिता अपने बाग का माली होता है, और माली ही 'गर सही न हो तो बाग का उजाड़ना निश्चित हो जाता है।

प्राचीन काल में साामाजिक व्यवस्था के दो स्तम्भ थे-वर्ण और आश्रमद्य व्यक्तिगत संस्कार के लिए मनुष्य के जीवन का विभाजन चार आश्रमों में किया गया था। ये चार आश्रम थे-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास। जब बालक पांच वर्ष का हो जाता था तब उसको गुरूकल भेज दिया जाता था। जहाँ वह शिक्षा प्राप्त करता था, यह कार्यकाल? वर्ष तक की उम्र तक का माना जाता था, यह ब्रह्मचर्य काल होता था, इसके उपरान्त गृहस्थ आश्रम में प्रवेश होता था, जो दस वर्ष तक की आयु तक का काल होता था, इस काल में विवाह उपरान्त वैवाहिक जिम्मेदारियों को निभाना होता था। इसके के बाद व्यक्ति गृहस्थी से मोह भंग करने की चेष्टा करता और वह गृहस्थी

से मुक्त हो सामाजिक कार्य करने में लग जाता और वर्ष के होते होते वह सन्यासाश्रम की ओर प्रस्थान करता था, इस काल में वह ईश्वर भक्ति में लीन हो मोझ प्राप्ति के लिए अग्रसर होता था। आज भी यह आश्रम है पर इनका परिवेश बदल गया है, गुरूकुल की जगह स्कूल ने ले ली है और अब तो ढाई साल में ही बच्चों को प्ले ग्रुप में प्रवेश दिलवा दिया जाता है। वानप्रस्थ की उम्र में आते-आते जब व्यक्ति की सोच और मानसिकता बदलने लगती है और घर गहस्थी से मुक्त होने से इच्छा प्रबल हो जाती है, अब अलग से आश्रम तो होते नहीं, अब इस उम्र के बुजुर्गों को व वृद्धाश्रम का दरवाजा दिखा दिया जाता है जो पाश्चात्य संस्कृति की नकल कही जा सकती है, वानप्रस्थ के लिए वन में जाना जरूरी नहीं घर में रहकर भी इस तरह का जीवन यापन किया जा सकता है, इसका उदाहरण मधुदीप जी ने अपनी लघुकथा 'वानप्रस्थ' दी है। इस लघुकथा में पिता का पात्र औरों से अलग है, जो अपने बच्चों को जिम्मेदारियां दे कर खुद को मुक्त करना चाहते हैं और वह अपनी पत्नी के साथ अब अपना निज जीवन जीना चाहते हैं अपनी इच्छानुसार। इस लघुकथा का नायक पिता 'जगदीश लाल बंसल' है जिसका तीन मंजिला भवन है जिसको वह कुटिया ही मान रहे हैं। इनका बचपन झोपड़ी में गुजरा है, और वे ईश्वर के शुक्रगुजार हैं जिन्होंने उनको यह सुख दिया। अपने मेहनत से व मिल मजदूर से मिल मालिक बने, जिसके लिए खुद को कोल्हू का बैल बनना पड़ा।

खाने की मेज पर सब बैठ हुए थे, उन्होंने अपनी पत्नी, दोनों बेटों और बहूओं से पूछा, ''आज हम सब एक साथ हैं। मैं आप सभी से पूछना चाहता हूँ कि यह घर-परिवार सब-कुछ कैसा चल रहा है?

इस प्रश्न से परिवार के सदस्य चौंक जाते है, वे अपनी मनस्थिति को समझ कर उनसे पूछते हैं, ''क्या ऐसा कुछ बाकी रह गया है जिसमें आपको मेरी मदद की आवश्यकता है?''

बेटो को ऐसी उम्मीद नहीं थी, बड़ा बेटा कहता है, '' आपकी आवश्यकता तो हमें जीवन भर रहेगी पिताजी!''

पिताजी उनकी तरफ मुखातिब हो कर कहते हैं, ''नहीं बेटे, अब आप सबको खुद मुख्त्यार बनना होगा। मैं अपनी और तुम्हारी माँ की आवश्यकता के लिए रखकर सब-कुछ आप दोनों के परिवार के नाम कर दिया है। वकील आपको समझा देगा।''

पिता द्वारा किया गया ऐसे निर्णय से उनके परिवार को न सिर्फ आश्चर्य होता है, अपितु वे उनको अपने निर्णय को बदलने के लिए भी प्रयास करते है, पत्नी भी टोकती है यह सुनकर, '' इन्हें तो पुरे जीवन आपकी जरूरत रहेगी।''

तब पिता कहते हैं कि बच्चे बड़े हो गए हैं और कब तब ऊँगली पकड़ कर चलेंगे?क्योंकि वह भी अब इस उम्र को पार कर चुके हैं।

परिवार वालों पर वज्र गिरता है जब वह ढ़ता पूर्वक अपना एक और निर्णय सुनाते हैं, ''लक्ष्मी, हम अपनी उम्र का एक पड़ाव पार चुके हैं। अब तक की जिन्दगी हमने इनके लिए जी

है। अब आगे अपने और तुम्हारे लिए जीना चाहता हूँ।'' पति-पत्नी का रिश्ता इस उम्र तक आते-आते और भी मजबूत बन जाता है, जवानी में अपने कर्तव्यपालन में दोनों ही अपना सर्वस्य लगा देते हैं और स्व को भूल जाते है, पर वानप्रस्थ की उम्र तक पहुँचते पहुँचते उनको एहसास होता है कि उनका भी को निजी जीवन था, एक दुसरे को समय देना अब तो संभव हो सकता है, घर से बाहर जाकर परिवार से अलग होना कोई बड़ी बात नहीं परन्तु घर में रहते हुए भी घर से अलग होने के लिए दृढ़ता की आवश्यकता होती है, और ऐसे निर्णय करना आसान नहीं, परन्तु कोई व्यक्ति ऐसा निर्णय जब ले लेता है तो उस निर्णय को चुनौती कोई नहीं दे सकता न ही इस फैसले को बदला जा सके ऐसी कोई संभावना ही होती है।

ऐसा ही कुछ इस परिवार के साथ हुआ, अपना निर्णय सुनाने के बाद जगदीशलाल प्रसन्नचित हो भोजन करने लगे। पत्नी शायद उनकी बात समझ चुकी थी लेकिन बेटे और बहूओं की निगाहों में हजारों प्रश्न थे जिनके अब कोई उत्तर नहीं मिलना था।

पिता का इस तरह से निर्णय किस वजह से हुआ, और भविष्य में किस तरह से वे अपने बच्चों से उम्मीद करते हैं, इस तरह के अनकों प्रश्नों से घिरे उनके बच्चों के पास और कोई चारा न रहा अपने पिता के निर्णय को मान्य करने के अलावा।

यों तो पिता पात्र का चित्रण करती असंख्य लघुकथाएँ लिखी गयी है, किन्तु मैं जितनी लघुकथाओं का अध्ययन कर पायी और उनमें से जिन लघुकथाओं ने विषयानुसार मेरा घ्यान आकर्षित किया या जिन्होंने मुझे उन पर कलम चलाने को विवश किया मैं उदाहरण स्वरूप उन्हीं लघुकथाओं के केन्द्र में रखा। इसके अतिरिक्त भी अनेक लघुकथाएँ थी, जिनकी चर्चा होनी चाहिए थी, किन्तु विस्तार की दष्टि से इन्हीं कुछेक से अपनी बात स्पष्ट करने का अति विनम्र प्रयास किया है। अन्य जिनकी लघुकथाओं ने मुझे आकर्षित किया उनमें कमल चोपड़ा, रूपदेवगुण, राजकुमार निजात, सतीश राठी, मधुकांत, शील कौशिक, कमल कपूर, सीमा जैन, सविता मिश्र, डॉ0 राम कुमार घोटड़, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु', योगराज प्रभाकर, डॉ0 ध्रुव कुमार, विभारानी श्रीवास्तव इत्यादि प्रमुख हैं।

इस लेख में मेरा प्रयास रहा है कि पिता पात्रों के विभिन्न चरित्रों का चित्रण प्रस्तुत किया जाए, अब अपने उद्देश्य में मैं कहाँ तक सफल हो पाई हूँ, इसका निर्णय तो मेरे पाठक करेंगे।

कल्पना भट्ट, श्री द्वारिकाधीश मंदिर, चौक बाजार, भोपाल–462001 (म.प्र.)
मो. : 9424473377

लघुकथा : साहित्य की विशिष्ट विधा

निरूपमा राय

यहाँ हम कतिपय ऐसी लघुकथाओं को लेकर उनके पात्रों की चर्चा एवं चित्रण करेंगे। यह चर्चा एवं चित्रण बुजुर्गो के प्रति हो रहे वर्तमान व्यवहार के सकारात्मक, नकारात्मक एवं अन्यान्य तरह का भी हो सकता है। जिसे क्रमशः यहाँ प्रस्तुत करेंगे। कारण कभी-भी समाज में सब नकारात्मक नहीं होता और सभी सकारात्मक भी नहीं होता। इन दोनों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की प्रवृत्तियाँ भी समाज में देखने को मिलती है।

साहित्य की सभी विधाओ में कहानी सर्व प्राचीन विधा है। जिसके छह महत्वपूर्ण तत्व है, कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, देशकाल वातावरण, उद्देश्य एंव शैली। जिस तरह पद साहित्य में क्षणिकाएं, दोहे आदि अपना अलग महत्व रखते हैं, उसी प्रकार गद्य साहित्य में लघु कथा का महत्वपूर्ण स्थान है। कहानियां समाज का दर्पण होती जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र नहीं है, अपितु जीवन की विविध समस्याओं और संवेदनाओं को व्यक्त करना भी है। भारत में वैदिक युग से ही अनेक कथाएं प्रचलित थीं, जिनका विकास प्रारंभिक अवस्था में अद्‌भुत कथा, लोककथा, कल्पित कथा और पशु कथा के रूप में हुआ। यह कथाएं छोटी और संदेशात्मक थीं। ऋग्वेद में कई कथाएं है, जैसे यम-यमी सरमा पणि, श्वेतकेतु और बालक और मनुष्य एवं मछली आदि की कथाएं। उपनिषदों में भी लघु कथाएं थीं जैसे छांदोग्य उपनिषद में उदगीथ स्वान की कथा आती है जिसमें कुत्तों की एक रूपात्मक व्यंग लघुकथा है, जो भोजन के लिए चिल्लाने वाला एक नेता ढूंढते हैं। प्रश्नोपनिषद में एक छोटी सी कथा के द्वारा समस्त इंद्रियों से प्राण की श्रेष्ठता बताई गई है। इन लघु कथाओं को हम वर्तमान की लघु कथा का प्रारंभ मान सकते हैं। पौराणिक काल में कई छोटी-बड़ी कथा कहानियां अस्तित्व में आई जिनमें समाज निर्माण के प्रेरक तत्व महत्वपूर्ण विचार, और गहन संदेश कूट-कूट कर भरे थे। धीरे धीरे संदेश और ज्ञान के साथ विविध सामाजिक

समस्याएं और मानवीय संवेदनाएं भी कहानी का प्राण तत्व बनने लगे। ब्राहमणों उपनिषदों, पुराणों, महाभारत, रामायण आदि में उत्तरोत्तर यदि कहानियां विकसित हुई तो लघुकथा भी अपना स्थान बनाने लगी। महर्षि पंतजलि ने 150 ईसवी में ''महाभाष्य'' नामक ग्रंथ में सांप नेवले और कौवे तथा उल्लू की जन्मजात शत्रुता का छोटी कथा के रूप में उल्लेख किया है। ''पंचतंत्र'' में कथा-साहित्य अपने पूर्ण रूप में विद्यमान था। ईसा पूर्व 380 के लगभग बौद्ध जातक कथाओं का उल्लेख मिलता है। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के भरहुत स्तूप पर कई नीति कथाएं जो छोटी-छोटी हैं उत्कीर्ण है। प्रथम शताब्दी में बृहत कथा, बृहत कथा मंजरी आदि अनेक ग्रंथ अस्तित्व में आए जिन्होंने कथा साहित्य को समृद्ध किया। इनमें भी कथाओं के साथ कई छोटी-छोटी लघु कथाएं थी। 800 ईसवी के लगभग हितोपदेश में, 1037 ईसवी में कथासरित्सागर में, 1480 ई. के लगभग बेताल पच्चीसी तथा 1063 ई. के लगभग सिंहासन बत्तीसी में कई कथा कहानियां अस्तित्व में आयीं जो आकार में तो छोटी थी पर बेहद प्रभावी थीं।

14वीं शताब्दी में सुकसप्तशती तथा 15वीं शताब्दी में कवि विद्यापति रचित-पुरूष परीक्षा, जिसमें 44 छोटी कहानियों का संग्रह है बेहद रोचक शिक्षाप्रद तथा संदेशप्रद थी। ''कथार्णव'' नामक प्राचीन ग्रंथ में तो चोर और मूर्खों की 35 लघु कथाएं हैं। वर्तमान समय में लघु कथा अपने विस्तृत फलक के साथ विद्यमान है। इस उत्तर आधुनिक काल में यथार्थ की छवियां बड़ी लंबी विस्तृत गाथाओं बृत्तांतो में नहीं, अभी तो छोटी-छोटी कथाओं में ही पूर्णता प्रकट हो जाती हैं। लघु कथा कहानी काल का ही उत्कृष्ट प्रकार है। जिसके माध्यम से कम से कम शब्दों में जीवन का मर्म, रहस्य, विचार, व्यथा और हाल भी प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया जाता है। वर्तमान समय में लघुकथा साहित्य की सशक्त विध, के रूप में आकार पा रही है। रिश्वत, हत्या, फिरौती बलात्कार, झूठ फरेब, भष्टाचार, लूट, जातिवाद परिवारवाद, संप्रदायवाद, घृणा, शोषण और दमन के साथ साथ मानवीयता संवेदनशीलता, त्याग, सहयोग और प्रेम भी इन लघु कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है। लघु कथाओं में छिपे मार्मिक पहलू और तीखे व्यंग पाठक को भीतर से कुरेद देते है, और सोचने पर विवश करते हैं। यही लघु कथाओं की सार्थकता है किसी भी समाज का सच वहां के साहित्य रूपी दर्पण में स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है। समाज का प्रतिबिंब है साहित्य और साहित्य की एक उद्देश्य पूर्ण विधा है लघु कथा।

लघुकथा मानवीयता की पक्षधर तथा अप्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिक और संकीर्ण सोच की विरोधी होती है। लघु कथा की अभिव्यक्ति क्षमता व्यापक है। विभिन्न भाषाओं की प्रतिनिधि लोक कथाऐ विशेषकर लघु कथाओं में ही है। लघु कथाएं केवल नीतिकथा या बोधकथा मात्र नहीं अपने लघु आकार में संपूर्ण कथा समेटती लघु कथा की सहज संवेदना पाठक को आंदोलित कर देती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि लघुकथा का अपना आकाश है और लघु कथा का मर्म है उसका संक्षिप्त कथा तत्व। हिंदी की पहली लघु कथा जो एक सार्थक रचना कही जाती है, ''माधव राव सप्रे'' (जिनकी मातृभाषा मराठी थी जो हिंदी पत्रकार थे) की लिखी हुई है। लघु कथा का नाम है-''टोकरी भर मिट्टी''। यह लघु कथा 1900-1901 के ''छत्तीसगढ़ मित्र'' के अंक में

प्रकाशित हुई थी। उसके बाद कई लघु कथाएं लिखी जाने लगीं। उल्लेखनीय है, भारतेंदु हरिश्चंद्र की-मेहमान, अंग हीन धनी। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की-पाठशाला। उपेंद्रनाथ अश्क की-गिलट। प्रेमचंद की-राष्ट्र का सेवक, बंद कारखाना। विष्णु प्रभाकर की- ईश्वर का चेहरा, पानी की जान। दिनकर की लघुकथा-नदियां और समुद्र। शरद जोशी की-चौथा बंदर। यशपाल की-सीख। हरिशंकर परसाईकी-जाति। राजेंद्र यादव की-अपनी की मूर्ति। डॉक्टर शिवनारायण-जहर के खिलाफ। रामवृक्ष बेनीपुर-घासवाली। जानकी वल्लभ शास्त्री-पंडित जी। मधुकर गंधाधर-मछलियों की जीत, सहेली। चंद्रमोहन प्रधान-वीआईपी का भाई, प्रेम विवाह। हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में जो किसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं लघु कथाएं लिखी और सराही जाने लगी।

उदाहरण के लिए राजस्थानी भाषा में विजय दान देथा की लघु कथाएं-पगड़ी तो तेरी भैंस चर गई, बनिए का नौकर अपूर्व मनुहार और खटपट की साधना। मैथिली में-राजकमल चौधरी द्वारा लिखित लघु कथाएं-ननंद भोजाई और वैष्णव बहुत प्रसिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त हरिमोहन झा प्रीत-द्वादश निदान और अंगिका भाषा में डॉक्टर शिवनारायण- चरैवेति चरैवेति प्रसिद्ध है। गुजराती भाषा में विनोद भट्ट की-खून का रंग, देसी माल, भिक्षा पात्र, धर्मगुरू की शराब आदि में समाज का यथार्थ रूप दृष्टिगोचर होता है। असमिया में भूपेन हजारिका लिखित कई लघु कथाएं प्रसिद्ध है जैसे, उग्रवादी, भरी थाली, पुनर्मिलन। इसके अतिरिक्त लक्ष्मीकांत बैरवा ने भी असमिया में कई लघु कथाएं लिखी जिसमें जलपरी और मछली और इंसान प्रसिद्ध है। अंग्रेजी भाषा में खलील जिब्रान की लघुकथाएं पाठकों को झकझोर कर रख देती है। बांग्ला भाषा में रविंद्र नाथ टैगोर ने पगला सवाल, राज विचार और वन फूल जैसी कई लघु कथाएं लिखीं। मणिपुर मैं ईबो हल सिंह ने दो मोर्चे और शिकायत जैसी लघु कथाएं लिखी। उड़िया भाषा में यदुनाथ दास महापात्र लिखित शून्य के भीतर लघु कथा बहुत प्रसिद्ध हुई। इसी तरह मणिपुरी भाषा में लंचेन्बा मीतैं द्वारा लिखित विलाप नामक लघु कथा काफी प्रसिद्ध हुई थी।

हिंदी अरबी उर्दू फारसी चीनी रूसी जर्मन अंग्रेजी संथाली बांग्ला मराठी मलयालम आदि भाषाओं में लघु कथा का एक विशिष्ट स्वरूप उभरकर सामने आता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि मानव संवेदना को अपने भीतर समेट कर कम शब्दों में कथा तत्व के मर्म को उभार कर पाठकों के समक्ष रख देने वाली लघुकथा का अपना विशाल अनंत आकाश है।

निरूपमा रॉय

हिन्दी लघुकथाओं में समाज और संस्कृति

खेमकरण 'सुमन'

लघुकथा के अर्थ पर विचार करें तो इसका आशय है- ऐसी कथा रचना जो संक्षिप्त हो, परन्तु भाव एवं विचार की दृष्टि से बहुत मारक। यह प्रमुखतः दो शब्दों के योग से बना है-लघु और कथा। जिसमें लघु होना अथवा लघुता इसकी अनिवार्य विशेषता है। कथा से तात्पर्य है कहना अर्थात जीवन-क्रियाओं एवं घटनाओं की कलात्मक प्रस्तुति। इस प्रकार लघुकथा से तात्पर्य कथा रचना की उस विधा से है जिसमें अपने लघु स्वरूप में बड़ा कहने की शक्ति निहित होती है।

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी लघुकथा का विकास तीव्र गति से हो रहा है। वर्तमान में यह विधा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी और सोशल मीडिया की अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी हैं। लघुकथा लेखक एवं संपादक इस विधा के उन्नयन हेतु निरन्तर सक्रिय हैं।

हिन्दी लघुकथा के विकास में बिहार, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और नई दिल्ली आदि राज्यों का नामोल्लेख सदैव होता है। वास्तव में प्रारम्भ से इन राज्यों के केन्द्र में लघुकथा और लघुकथा के केन्द्र में ये राज्य हैं। लघुकथा का विस्तार यदि सात समुन्दर पार तक है तो कोई संशय नहीं कि इसके पीछे इन राज्यों और लघुकथाकारों की प्रमुख भूमिका है।

लघुकथा के विकास में उत्तराखण्ड का योगदान बहुत कम है। लघुकथा आलोचना कर्म में तो पूर्णतः शून्य तथापि विगत डेढ दशकों से अपने कुछ लघुकथाकारों के साथ यह राज्य प्रतीत कराता रहा है कि हिन्दी लघुकथा हेतु यहाँ की मिट्टी भी उपजाऊ है, मात्र अनवरत प्रयत्न की आवश्यकता है। इसी का प्रतिफलन है कि वर्तमान में उत्तराखण्ड में लघुकथाकारों की संख्या बढ़ी और उनकी लघुकथाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। इन लघुकथाओं में जहाँ क्षेत्रीय लोक की रंग-रूप, जीवन और चमक-धमक उपस्थिति हैं, वहीं व्यापक जनसमाज भी दृष्टिगोचर होता है। सुखदायी है कि उत्तराखण्ड के लघुकथाकार पृष्ठ भरान अथवा

दिल-बहलाव हेतु नहीं लिख रहे हैं अपितु उनके लेखन के पीछे उद्देश्य है-लघुकथाओं में संवेदना और विचार तत्वों का समावेश।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन यद्यपि उत्तराखण्ड के ग्यारह लघुकथाकारों यथा-आशा शैली, आशा रावत, ललित शौर्य, महेन्द्र सिंह राणा, कस्तूरीलाल तागरा, दिनेश कर्नाटक, नवीन कुमार नैथानी, महेशचन्द्र पुनेठा, रश्मि बड़थवाल, रावेन्द्र कुमार 'रवि' और शशिभूषण बड़ोनी की लघुकथाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है, तथापि शोध एवं बोध की दृष्टि से वर्तमान में सक्रिय सम्पूर्ण लघुकथाकारों की सूची प्रस्तुत करना समीचीन होगा, जो निम्नवत है-

1. अर्चना त्रिपाठी (टनकपुर, जनपद-चम्पावत)
2. अदिति मेहरोत्रा (देहरादून, जनपद-देहरादून)
3. आशा शैली (लालकुँआ, जनपद-नैनीताल)
4. आशा रावत (डालनवाला, जनपद-देहरादून)
5. आशा जुगरान (ऋशिकेश, जनपद-देहरादून)
6. आभा सक्सेना दूनवी (देहरादून, जनपद-देहरादून)
7. उमेश महादोशी (रूड़की, जनपद-हरिद्वार, वर्तमान में बरेली)
8. कस्तूरीलाल तागरा (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
9. डॉ0 कविता भट्ट (श्रीनगर, जनपद-पौढ़ी गढ़वाल)
10. किरण अग्रवाल (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
11. कुसुम जोशी (पिथौरागढ़, जनपद-पिथौरागढ़)
12. के. एल. दिवान (गुरूकुल कांगड़ी, जनपद-हरिद्वार)
13. कैलाश चन्दोला (दिनेशपुर जनपद-ऊधम सिंह नगर)
14. खेमकरण 'सोमन' (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
15. गम्भीर सिंह पालनी (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
16. जगदीश पन्त 'कुमुद' (खटीमा, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
17. जे0एम0 सहदेव (दिनेशपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
18. दिव्या शर्मा (केदारपुरम्, जनपद-देहरादून)
19. डॉ0 एम0 सी0 पाण्डे (हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल)
20. डॉ0 प्रभा पन्त (हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल)
21. दिनेश कर्नाटक (हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल)
22. नवीन कुमार नैथानी (देहरादून, जनपद-देहरादून)
23. नीता मुनगली (भीमताल, जनपद-नैनीताल)
24. ललित शौर्य (पिथौरागढ़, जनपद-पिथौरागढ़)
25. महावीर रंवाल्टा (आराकोट, जनपद-उत्तरकाशी)

26. महावीर उत्तरांचली (वर्तमान में दिल्ली)
27. महेशचन्द्र पुनेठा (पिथौरागढ़, जनपद-पिथौरागढ़)
28. महेन्द्र सिंह राणा (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
29. मीरा भारद्वाज (ज्वालापुर, जनपद-हरिद्वार)
30. मोहन चन्द्र पाण्डेय (हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल)
31. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' (रूड़की, जनपद-हरिद्वार)
32. रमेशचन्द्र पन्त (द्वाराहाट, जनपद-अल्मोड़ा)
33. रश्मि बड़थ्वाल (जनपद-पौड़ी, वर्तमान में लखनऊ)
34. राजेश्वरी जोशी (शक्तिफॉर्म, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
35. रावेन्द्रकुमार रवि (खटीमा, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
36. रूपेश कुमार सिंह (दिनेशपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
37. हरप्रसाद 'पुश्पक' (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
38. शबादत हुसैन खान (रूद्रपुर, जनपद-ऊधम सिंह नगर)
39. शशिभूषण बड़ोनी (देहरादून, जनपद-देहरादून)
40. शेफाली पाण्डेय (हल्द्वानी, जनपद-नैनीताल)

हिन्दी लघुकथा का अर्थ एवं परिभाषा

लघुकथा हिन्दी साहित्य की नव्यतम विधा है, जिसे परिभाषित करने का कार्य स्वतन्त्रता के पश्चात, विशेषरूप से आठवें दशक से प्रारम्भ हुआ, जो कि लघुकथा विधा के लिए उत्थान बिन्दु है। परिणामस्वरूप इस विधा ने अपना परम्परागत स्वरूप त्यागकर तीव्रगति से आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया। हिन्दी लघुकथा हेतु इस कालावधि को, पुनर्स्थापना काल कहा जाता है।

लघुकथा के अर्थ पर विचार करें तो इसका आशय है- ऐसी कथा रचना जो संक्षिप्त हो, परन्तु भाव एवं विचार की दृष्टि से बहुत मारक। यह प्रमुखतः दो शब्दों का योग से बना है-लघु और कथा। जिसमें लघु होना अथवा लघुता इसकी अनिवार्य विशेषता है। कथा से तात्पर्य है कहना अर्थात जीवन-क्रियाओं एवं घटनाओं की कलात्मक प्रस्तुति। इस प्रकार लघुकथा से तात्पर्य कथा रचना की उस विधा से है जिसमें, अपने लघु स्वरूप में बड़ा कहने की शक्ति निहित होती है। लघुकथा के इसी महत्व के कारण ममता कालिया ने नई दिल्ली में आयोजित 'आर्य स्मृति साहित्य सम्मान' के अवसर पर कहा कि-''लघुकथा एक रिलीफ का कार्य करती है। मैं पत्रिकाओं में सबसे पहले लघुकथा और कविता ही पढ़ती हूँ।''[1]

प्रभावशाली प्रस्तुति होने के पश्चात भी लघुकथा मुख्यधारा के साहित्यकारों-आलोचकों की कृपादृष्टि से वंचित है, तथापि कुछ साहित्यकारों ने इसे परिभाषित करने का कार्य किया है। अपने विकास पथ पर दौड़ती हिन्दी लघुकथा इसी से तृप्त है। इस क्रम में ममता कालिया के उद्‌गार हैं कि-''लघुकथा लिखते समय, किसी लोकोक्ति या सुनी हुई रचना की झलक न मिले। लघुकथा की शक्ति है उसकी तीक्ष्णता। उसमें अपूर्णता नजर नहीं आनी चाहिए। लघुकथा कहानी की हाइकू है।''[2]

आचार्य जानकीबल्लभ शास्त्री के अनुसार-''जैसे महाकाव्य के आंशिक गुणों से युक्त काव्य खण्ड को खण्ड-काव्य अथवा गीति काव्य कहा जाता है। उसी प्रकार कथा शिल्प के आरम्भ से चरम बिन्दु तक के अनेक तत्वों को प्रभावशाली ढंग से आत्मसात कर जो विधा प्रकाश में आई, उसे हम लघुकथा कहेंगे।''[3]

डॉ0 बलराम अग्रवाल की दृष्टि में-''लघुकथा से हमारा तात्पर्य आधुनिक यथार्थबोध की लघ्वाकारीय गद्य कथा-रचना से है, परम्परागत दृष्टांतपरक, नीतिपरक, उपदेशपरक, कथारचना से नहीं।''[4]

डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं कि-''लघुकथा किसी विशेष क्षण में उपजे भाव, घटना या विचार की संक्षिप्त और शिल्प से तराशी गई प्रभावशली अभिव्यक्ति है। लघुकथा संक्षिप्त होती है और सांकेतिकता से परिपूर्ण। वह जीवन की व्याख्या लाक्षणिक रूप से करती है। उसमें वर्णन और विवरण का अवकाश नहीं होता। वहाँ संकेत और व्यंजना से काम चलाया जाता है।''[5]

निष्कर्ष रूप में यह कि-

1. लघुकथा कथा शिल्प की यथार्थ वादी विधा है।
2. लघुकथा की प्रमुख विशेषता उसकी लघुता है। इसी आधार पर यह गागर में सागर भरने का कार्य करती है।
3. वर्तमान कालावधि में परम्परागत दृष्टांतपरक, नीतिपरक, उपदेशपरक, बोधपरक कथारचना अथवा लोकोक्तियों से लघुकथा का कोई सम्बन्ध नहीं।
4. लघुकथा, कम शब्दों की परन्तु ठोस एवं प्रभावशाली कथा रचना है।
5. लघुकथा भाव, विचार और शिल्प की अप्रतिम प्रस्तुति है।
6. लघुकथा, छोटी कहानी, लघु कहानी, छोटी कथा और मिन्नी कहानी आदि अन्य नामों से भी अभिभाषित है।

हिन्दी लघुकथाओं में समाज और संस्कृति

समाज और संस्कृति मानव के मूल हैं। इनसे सम्बन्धित समस्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखने एवं उनके निदान की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। हित की भावना होने के कारण साहित्य बड़ी सूक्ष्मता से यह कार्य करता है। वह उन समस्याओं की ओर संकेत करता है जिसकी ओर मानव का ध्यान प्रायः नहीं जाता। उदाहरण-रोटी का महत्व, जो सदियों से मानव समाज के लिए एक बड़ी समस्या है। इसी हेतु मनुष्य दिनभर कड़ी धूप में खटता है तो रातभर औद्योगिक-प्रौद्योगिक आस्थानों में। कोई सिर पर मैला ढोला है तो कोई मृत पशुओं की चमड़ी उतार कर अपना घर-परिवार चलाता है।

यथार्थ में रोटी व्यंजना है-मनुष्य के जीवननिर्वाह हेतु सम्पूर्ण और स्वादिष्ट भोजन का, जिसके लिए कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त घर-परिवार से दूर रहता है। अब परिवर्तित मूल्यों में विसंगतियाँ इतनी विस्तार ले चुकी हैं कि रोटी के कारण, मनुष्य ही मनुष्य का शत्रु बन बैठा है। उन्नतशील आधुनिक समाज में रोटी की समस्या अधिकांशत: निम्न-मध्यम वर्गों की है। ऐसे में बच्चे, घर में रोटी की महत्ता बहुत विलम्ब से समझते हैं। ललित शौर्य की लघुकथा 'रोटी'[6] इसी विषय पर केन्द्रित है। जब बेटा बिना रोटी खाए कॉलेज जाता है तो रास्ते में वह मरे हुए जानवर की खाल निकाल रहे अधेड़ से जिज्ञासावश इस कार्य का कारण पूछता है। अधेड़ व्यक्ति कहता है कि इसके पीछे भूख और रोटी का सवाल है।

बेटा, कॉलेज तो पहुँच जाता है परन्तु रोटी दिनभर उसके मन मस्तिष्क में घूमती रहती है।

ललित शौर्य नवोदित लघुकथाकार है जो भाव के स्तर पर तो सजग हैं परन्तु शिल्प के प्रति असावधान। अत: आवश्यक है कि नए लघुकथाकार, लघुकथा के शास्त्र से परिचित हों ताकि ठोस शिल्प की यथार्थवादी लघुकथा की अपेक्षा ये, सामान्य ढंग से आदर्शवादी लघुकथा रचने में अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा समाप्त न कर दें। जैसा कि फेसबुक पर लघुकथा पृष्ठों एवं वाट्सअप ग्रुपों की दयनीय स्थिति है।

इसके विपरीत महेन्द्र सिंह राणा ने 'रहीशजादा मालिक और उसके दो कुत्ते'[7] शीर्षक, मात्र एक लघुकथा लिखी है, जो उनके उज्ज्वल भविष्य ओर संकेत कर देती है। ललित शौर्य की लघुकथा की तरह महेन्द्र सिंह राणा की लघुकथा का विषयवस्तु भी रोटी है परन्तु महेन्द्र सिंह राणा की सूक्ष्म दृष्टि एवं शिल्प के प्रति सक्रियता से लघुकथा प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय है।

आधुनिक समय में रोटी की चिन्ता इतनी बढ़ गई है कि रोटी की चिन्ता है परन्तु रोटी न मिलने के कारणों पर चिन्ता नगण्य है। इस सन्दर्भ में साठोत्तरी कवि धूमिल कह गए कि-

एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ-
यह तीसरा आदमी कौन है ?
मेरे देश की संसद मौन है।[8]

तीसरे आदमी के प्रश्न पर देश की संसद सदैव की भाँति मौन है, और श्रमशील जनमानस भी एक दूसरे को सुलझने-सुलझाने की अपेक्षा उलझने-उलझाने में है! तो इसका कारण भी तीसरा आदमी है।

विचारणीय है कि यदि कोई मनुष्य रोटी से खेलने का प्रयत्न करता है, तो वह निश्चित ही निष्ठुर और निर्दयी होगा! महेन्द्र सिंह राणा की लघुकथा 'रहीशजादा मालिक और उसके दो कुत्ते' का भाव है कि मालिक को रोटी के साथ खेलने की लत लगी है। मालिक रोटी दिखाता है और दोनों कुत्ते उस रोटी को एक-दूसरे से पहले लपकना चाहते हैं। रोटी प्राप्ति के खूनी प्रयत्न में दोनों एक-दूसरे से टकराकर और लहूलुहान होकर अन्ततः मृत्यु द्वार पर पहुँच जाते हैं।

जीवन के अंतिम क्षणों में दोनों कुत्ते, रोटी की नहीं अपितु अपनी आँखों में अपराधबोध लिए अनुभूति करते हैं कि वे षड्यन्त्र के शिकार हो गए हैं। इसी के साथ दोनों की इच्छाएँ भी सदैव के लिए आँखें मूँद लेती हैं।

वास्तव में जीवन एकपक्षीय नहीं, जैसा कि प्रायः समझ लिया जाता है। यह बहुपक्षीय सामाजिक समझौता है जिसमें एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य पर निर्भरता है। कोई इससे भिन्न नहीं। परन्तु विज्ञान के युग में विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के पश्चात भी मनुष्य की इच्छाओं का अन्त नहीं। इस कारण वह अन्य मनुष्यों को लूटने-खसोटने और उनके प्राण तक हरने लगा है।

मनुष्य शक्तिशाली है, तो वह सामाजिक समझौतों को दरकिनार कर, अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कमजोर, अशक्त और निर्बल मनुष्यों पर अपनी इच्छाएँ थोंपने लगता है। शोषण की कथा का पहला अध्याय यही से प्रारम्भ होता है। इन विद्रूपताओं के परिणामस्वरूप कुत्ते तो कुत्ते, मनुष्य तक असमय अपने प्राण गवाँ रहे हैं। जैव विविधता भी संकट में हैं। मनुष्यों की द्वेशपूर्ण इच्छाओं और चालाकियों को देख धर्म और ईश्वर भी, इस दुनिया को उनके संजाल से मुक्त नहीं कर पाए हैं। उन्हें लगता है कि खूबसूरत दुनिया बनाने की उनकी इच्छा अभी अधूरी है। इस सन्दर्भ में नवीन कुमार नैथानी की लघुकथा 'ईश्वर' ईश्वर की इच्छाओं और उनकी विवशताओं को खूबसूरती से प्रस्तुत करती है-

''बेहद मामूली लोगों की बेहद मामूली ख्वाहिशें पूरी करते-करते एक रोज ईश्वर को लगा कि उसकी भी कुछ ख्वाहिशें होतीं। ख्वाहिशों के अतल समुद्र में डुबकी लगाने के बाद उसके हाथ एक ख्वाहिश आई-काश! उसका भी कोई ईश्वर होता।''[9]

वर्तमान में संवेदनशील हृदय को ताक पर रखकर, अपने कार्य से मतलब रखना आधुनिक मनुष्य की विशेषता है। आश्चर्य है कि आधुनिक समाज में सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के पश्चात भी मनुष्यों ने ऐसे मिथक गढ़ लिए हैं, जिनके कारण उनका व्यक्तित्व निरन्तर सिकुड़ रहा है। कहने का आशय है कि यदि ऐसे मिथक गढ़ लिए गए हैं तो उन्हें खण्डित कर, दूसरे मिथक भी गढ़े जा सकते हैं, जो मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने के प्रयत्न करें। इस क्रम में दिनेश कर्नाटक अपनी लघुकथा 'इधर उधर'[10] के माध्यम से सकारात्मक मिथक गढ़ने में पूर्णरूपेण सफल हैं।

लघुकथा का प्रतिपाद्य विषय यह है कि पत्नी के कहने पर नायक, अपने बॉस से जल्दी अवकाश लेकर घर पहुँचना चाहता है। रास्ते में बचपन का दोस्त मिल जाने पर वह वार्तालाप करने

लगता है। इसी बीच दो लड़के की आपसी लड़ाई में चाकू लगने से एक लड़का घायल हो तड़पने लगता है। अफरातफरी मचने से नायक का दोस्त भी नौ दो ग्यारह हो जाता है।

कई प्रकार के द्वन्द्वलेकर नायक अपने घर पहुँचता है, जहाँ यही चर्चा चल रही होती है। वह टी0वी0 चला देता है, तो उसमें भी यही खबर। संवेदनशील हृदय का व्यक्ति नायक अन्ततः पत्नी से कुछ देर बाद वापिस आने की बात कहकर घर से निकल जाता है कि सम्भव है उस घायल लड़के को खून की आवश्यकता हो!

लघुकथा का शीर्षक 'इधर उधर' भी अभिव्यंजित कर देता है कि मनुष्यों को किस प्रकार की जैविक एकजुटता व सांस्कृतिक नींव की आवश्यकता है। दिनेश कर्नाटक ने अभी तक मात्र चार लघुकथाएँ लिखी हैं जो सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वका सजीव उदाहरण हैं तथा भाषा-शैली और शिल्प की दृष्टि से भी ठोस।

दयनीय होता बुजुर्ग जीवन को देखकर बोध होता है कि देश का सामाजिक-सांस्कृतिक और पारिवारिक पक्ष अन्धेरे में है और भविष्य भयावह। इस अपसंस्कृति के अंकुरित होने के कई कारण, स्वयं मनुष्यों की इच्छाओं में निहित हैं। प्रथम, यही कि सामूहिकता की अपेक्षा अवसरवादी दृष्टि। द्वितीय, प्रत्येक मनुष्य विवशतावश ही परन्तु अन्त की ओर देखना चाह रहा है! जो कि गलत है! जैसा कि रूसी लेखक अलेक्सान्द्र इवानोवाविच हर्जन का कथन है कि अंत की ओर देखना, और उस चीज की ओर न देखना जो सामने मौजूद है-इससे बड़ी गलती दूसरी नहीं हो सकती।

हर्जन की उक्ति का आधार ग्रहण करें तो आधुनिकता की छाँव के पश्चात भी भारतीय समाज निरन्तर यही त्रुटि कर रहा है। आशा शैली की लघुकथ 'वानप्रस्थ'[11] उन्हीं बिन्दुओं की संकेत करती है, जिन्हें आत्मसात करने में युवा पीढ़ी प्रायः असमर्थ है।

लघुकथा में गुरू-शिष्य संवाद के अन्तर्गत उन दृश्यों का चित्रण है जिसमें आश्रम व्यवस्था पर संवाद करते हुए गुरू को भी यह स्मरण हो आता है कि सेवानिवृत्ति के पश्चात अन्ततः उन्हें वृद्धाश्रम जाना हैं। क्योंकि घर में बेटे और उनकी बहू में उन मूल्यों की नितान्त कमी है, जो बुजुर्गों को सम्मानित दृष्टि से देख सके। लघुकथा में एक बुजुर्ग गुरू की अपने बुजुर्ग जीवन और अपनी पत्नी की चिन्ता झलकती है।

मन्तव्य स्पष्ट है कि बुजुर्ग तो अपने अन्त की ओर देख पा रहे हैं। परन्तु उन बहू-बेटों का क्या जो, अपने कर्म के रूप में वर्तमान की सार्थकता भी देख नहीं पा रहें। यही विद्रूपता समाज को अन्दर से खोखला कर रही है। परन्तु एकमात्र यही विद्रूपता तो नहीं, जिससे समाज मुक्त होना चाह रहा है। प्रतीत होता है कि मनुष्य का सौन्दर्यबोध कहीं लुप्त हो गया है, जिस कारण वह वास्तविक सौन्दर्य के दर्शन करने की अपेक्षा कमियाँ निकालने तक सीमित होकर रह गया है!

क्या मनुष्य जीवन का यही लक्ष्य है? उसकी आशा-आकांक्षा, संस्कृति, सभ्यता और अनुभूति का कोई मोल नहीं! क्या मनुष्य भौतिक प्राणी के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकता! धार्मिक अंधदृष्टि ने मनुष्य को विकारग्रस्त एवं मानवता से अलग-थलग कर दिया है कि वर्तमान

में एक धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म के मध्य एक अदृश्य घाव लेकर घूमता दिखता है। महेश पुनेठा की लघुकथा 'अदृश्य घाव'[12] मानव मन की इसी पीड़ा को उजागर करती है!

लघुकथा का पात्र ऐसा अभागा व्यक्ति है, जिसे कोई भी मकान मालिक, अपना मकान किराए पर देना नहीं चाहता! यद्यपि कई जगह पर, सब कुछ निश्चित हो जाने के पश्चात भी मकान मालिक उसका नाम सुनकर मकान देने का विचार शीघ्र त्याग देता है। सपाट भाषा-शैली की यह ऐसी लघुकथा है, जो वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक विद्रूपताओं को बहुत व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है। यह मानव मन की पीड़ा का उच्चतम और मौन व्याख्यान है।

लघुकथा हिन्दू-मुस्लिम का उल्लेख किए बिना संकेत कर देती है कि साम्प्रदायिकता, देश की सबसे बड़ी समस्या है। इस बाधा को दूर करना आवश्यक है अन्यथा भविष्य में यह दूषित भाव देश के कोमल शरीर पर कई गहरे घाव कर सकता है। लघुकथा जहाँ वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य की दृष्टि से सफल है, वहीं भावुकता का सुन्दर संयोग भी है।

धर्म की छाँव में सामान्य मनुष्य आत्मिक शांति की अनुभूति करता है परन्तु राजनीतिक विद्रूपता ने धर्म को हथियार बनाकर मनुष्य-मनुष्य के मध्य गहरी खाई खींच दी है। यही कारण है कि राजनीति का क्षेत्र चाल-चालाकियों और गिद्धदृष्टि की तरह हानिकारक हो गया है।

विचार करें तो चालाकी और गिद्धदृष्टि मात्र राजनीति में नहीं अपितु घर-परिवारों तक भी पहुँच गई है। क्षेत्र कोई भी हो मनुष्य विशेषकर पुरूष जासूस में परिवर्तित हो गए हैं। कस्तूरीलाल तागरा की लघुकथा 'पुरूष मन'[13] इन्हीं बिन्दुओं को स्पर्श करने का सार्थक प्रयत्न है।

लघुकथा का शीर्षक 'पुरूष मन' सांकेतिक है। इसके विषयवस्तु के केन्द्र में पति-पत्नी और उनका प्रेम प्रसंग है। पति द्वारा अपने प्रेम-प्रसंग का उल्लेख करने पर पत्नी रूठ जाती है। कुछ दिनों पश्चात पत्नी मान जाती है कि भविष्य में पतिदेव ऐसी गलती न करे।

दोनों पुनः जीवन व्यतीत करने लगते हैं। तब एक दिवस पत्नी भी कहती है कि-''आपने मुझसे तो कभी पूछा नहीं कि मेरा भी कभी किसी से प्रेम-प्रसंग रहा है कि नहीं? इस पर पति शालीनता से उसे चुप कराकर कहता है-''हो भी तो कभी मुझे बताना नहीं। हम मर्दों के पास तुम औरतों जितना बड़ा दिल नहीं होता?'' मीठे शब्द सुनकर पत्नी के हृदय में पति के लिए सम्मान बढ़ जाता है परन्तु उस दिन के पश्चात पति, जासूस में परिवर्तित हो जाता है।

स्तरीय लघुकथा की तात्विक विशेषता है कि उसमें पात्रों का वर्णन एवं चरित्र-चित्रण नहीं होता अपितु कथ्य अथवा संवाद से उनके चरित्रों के विषय में ज्ञात हो जाता है। कस्तूरीलाल तागरा की लघुकथा 'पुरूष मन' इसका मनभावन उदाहरण है।

समाज और संस्कृति, मनुष्य की महत्वपूर्ण थाती हैं, जिसकी छाँव-धूप में मनुष्य जीवन व्यतीत करता है। यह निरन्तर परिवर्तित-परिवर्द्धित होती हुई एक ओर परम्परा से एवं दूसरी ओर आधुनिकता से सम्बद्ध रहती हैं। दोनों थातियाँ मनुष्य के मन-मस्तिष्क में समाहित रहती हैं अतः

इनके प्रति चिन्तन स्वाभाविक है, परन्तु प्राय: समाज और संस्कृति, विशेषकर क्षेत्रीय संस्कृति बचाने के नाम पर धूर्त व्यक्तियों ने इसे अपनी आय प्राप्ति का साधन बना लिया है। संवाद शैली में प्रस्तुत आशा रावत की लघुकथा 'संस्कृति' इस सत्यता हेतु पर्याप्त है-

(फोन पर दो भाइयों का वार्तालाप)

-दादा... प्रणाम! गाँव में सब ठीक है?

-चिरंजीव! सब ठीक हैं। तुम सुनाओ।

-दादा... मैं आपसे एक राय लेना चाहता हूँ।

-बोलो...?

-यहाँ ऋशिकेष में हमारी पट्टी के कुछ लोगों ने गढ़वाली संस्कृति को बचाने के लिए एक संस्था बनाई है। वे मुझे भी उसमें शामिल करना चाहते हैं।

-किसे बचाने के लिए...?

-हमारी भाशा-बोली और सभ्यता...।

-अच्छा...! तो वह कैसे बचेगी?

-वे कहते हैं प्रतिवर्ष एक हजार रुपये और प्रतिमाह दो सौ रुपये जमा करके हम गाँव जाते रहेंगे और वहाँ लोगों को अपनी संस्कृति बचाने के लिए प्रेरित करेंगे।

-वाह! योजना तो जोरदार है। लेकिन तुम पहले मेरी बातों का उत्तर दो।

-हाँ, पूछिए दादा।

-क्या तुम यहाँ गावँ में ब्याह-शादी या किसी के मरने-बचने पर बराबर आते हो?

-हाँ दादा...क्यों नहीं आऊँगा...!

-पूजा-पाठ, देवता-जागर, वार-त्यौहार में आते हो?

-हाँ जी, आता हूँ।

-फसल बोने, काटने और गर्मी की छुट्टी में तुम्हारे बाल-बच्चे गाँव आते हैं कि नही?

-क्यों नहीं आएँगे, दादा...! हमारी तो जड़ वहीं है न!

-तो संस्कृति बचाना और क्या होता है? यह सब उन पैसे वालों के चोंचले हैं, जो अपना घर-गाँव, भाईबंदी, देवता-जागर, वार-त्यौहार सब त्यागकर शहरों में जमे हैं। जो यहाँ बुलाने पर भी नहीं आते। वे इस बहाने अपने पाप धो रहे हैं। पर, तुम क्यों ...?[14]

लघुकथा में संस्कृति बचाने के माध्यम से पैसा कमाने की अपसंस्कृति का सुन्दर चित्रण है। वास्तव में अपने मूल से सम्बद्ध रहने का व्यवहार ही संस्कृति है। संस्कृति बचाओ कहने से संस्कृति नहीं बचती है अपितु अपनी परम्परा से सदैव जुड़े रहने से बचती है। यह चेतना ही संस्कृति की परम हितैशी है। अत: सहज भाषा-शैली की लघुकथा इस विचार को पुष्ट करती है कि संस्कृति बचाने के लिए, इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं। चाहे वह कुमाऊँनी, गढ़वाली संस्कृति के सन्दर्भ में हो अथवा अन्य राज्यों की क्षेत्रीय संस्कृतियों के सन्दर्भ में।

समाज के खाते-पीते वर्ग यथार्थ में ऐसे नवधनाढ्य हैं जिन्हें सामाजिक समस्याएँ कभी विचलित नहीं करतीं। परन्तु उनका ध्यान सभी दिशाओं में होता है। ऐसे नवधनाढ्य कभी कोई पहल भी नहीं करते, जिस कारण समाज की दृष्टि में वे स्मरणित रहें। कहने, लिखने और श्रवण के स्तर पर यह वर्ग अपने साथ ढकोसलों की पूरी टुकड़ी लेकर चलता है। उदाहरणार्थ-लड़कियों को देवी, लक्ष्मी, माता और सरस्वती की संज्ञा देना! किन्तु अवसर मिलने पर बलात्कार जैसा जघन्य कार्य कर देना। दहेज के लिए जला देना या जन्म होते ही कूड़ेदान में फेंक देना समान्य है।

ऐसे में कोई व्यक्ति यदि सुन्दर सामाजिक कार्य करे, तो यह वर्ग बिना अवबोधित हुए, उनके कार्यों पर प्रश्नचिह्न तक उठा देता है। परन्तु देर-सबेर उन्हें ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में यह भी एक राह है जहाँ से कई राहें विभिन्न दिशाओं में जाती हैं। इस सन्दर्भ में रश्मि बड़थ्वाल की 'माँ'[15] निश्चित ही मूल्यों को स्थापित करती हुई एक उच्च स्तरीय लघुकथा है जिसकी कथावस्तु यह है कि मुहल्ले में जो किरायेदारिन आई, आते ही यह फुसफुसाहट होने लगी कि उसकी पाँचों बेटियों के चेहरे भिन्न-भिन्न हैं। इस कारण उसका चरित्र संदिग्धता के घेरे में आ गया।

एक दिन पार्क में एक नवजात कन्या पड़ी मिली। पुलिस भी आ गई थी। उस किरायेदारिन ने नवजात कन्या को उठाकर अपने आँचल में समेट लिया। लोगों ने यहाँ भी प्रश्न करना छोड़ा नहीं। अन्ततः उसने एक फाइल लाकर पुलिस को दे दिया। फाइल देखकर पुलिस सहित सारे लोग समझ गए थे कि उसकी पाँचों बेटियाँ, इसी प्रकार उसकी गोद में आई थीं।

विश्व के सबसे बड़े हँसोड़ चार्ली चैपलिन ने माँ के विषय में कहा है, ''माँ अपने परिवेश से हमेशा बाहर ही रही। हमें समझाती और हमारे बात करने के ढंग और उच्चारण पर ध्यान देती रहती। हमारा व्याकरण सुधारती रहती और हमें ये महसूस कराती रहती कि हम खास हैं।''[16]

चार्ली चैपलिन ने अपने शब्द माँ के प्रति व्यक्त किए हैं। उन शब्दों में आलोक में कहना उचित होगा कि मुहल्ले में आई किरायेदारिन अनाथ लड़कियों के लिए इसी प्रकार विशेष है। लघुकथा का कथानक और शिल्प, निस्संदेह प्रशंसनीय है। वास्तव में इस प्रकार की लघुकथाएँ ही लघुकथा जगत की गौरव-संवृद्धि में सहायक होती हैं।

प्रेम समाज को जोड़ता है, और जीवन को भी। इतना समझने के पश्चात भी नैतिकता के प्रश्न पर विशेषकर लड़के-लड़कियों के प्रेम को स्वीकार भावना की अपेक्षा अवरोध की दृष्टि से देखा जाता है। उनके उन्मुक्त प्रेम को नैतिकता की दुहाई देकर अमान्य घोषित कर दिया जाता है। वास्तव में यह मानवीय भावना है, जिसे सामाजिक दबाव भी बाँध पाने में अक्षम है। अनेक विरोध के उपरान्त भी लड़के-लड़कियाँ अन्ततः विवाह बन्धन में बन्ध ही जाते हैं। वर्तमान में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। रावेन्द्र कुमार 'रवि' की लघुकथा 'लेकिन इस बार'[17] इस सन्दर्भ में एक रोचक प्रस्तुति है।

लड़की के प्रेम प्रसंग से पूर्ण परिचित होने के बाद भी लड़की के पिता ने इस गम्भीरता से नहीं लिया जबकि लड़का अच्छे घर का सुसंस्कृत और पढ़ा-लिखा था। लड़की उसके घर आती-जाती थी, और उसके घर वाले भी लड़की को बहुत पसन्द करते थे। लड़की ने अपने पिता

ने कहा–लड़के वाले आपसे वार्तालाप करना चाहते थे, परन्तु वार्तालाप करने की अपेक्षा पिता अपनी ही लड़की पर अत्याचार करने लगते।

एक दिन लड़की सदैव के लिए लड़के के घर चली गई। किसी ने बताया कि लड़की सुखी–सम्पन्न हैं। इस बार लड़की के पिता ने यह जानने का प्रयास किया कि इसमें कितनी सच्चाई है और वह लड़के का घर खोजने चल पड़े।

चाल यदि विसंगत व कुटिलतापूर्ण हों तो उसमें स्वाभाविकता नहीं आ पाती। समाज की चाल भी विसंगत और कुटिलतापूर्ण है। इसलिए प्रेम जैसी मानवीय भावनाएँ, नैतिकता के नाम पर कई बन्धनों के पश्चात भी बन्ध नहीं पातीं। फिर प्रेम में पग रहे व्यक्ति के लिए प्रेम जितना महत्वपूर्ण है, सतही व्यक्तियों के लिए मात्र विडम्बना है। इसलिए वह प्रेम की महत्ता समझ नहीं पाता। इस विषय में इतिहासकार उमा चक्रवर्ती का कथन हैं कि प्रेम एक तरफ व्यक्तिगत होता है, तो दूसरी तरफ सामाजिक भी। अत: कहीं न कहीं सामाजिक दबाव के कारण भी प्रेम की स्वीकार्यता बढ़ जाती हैं।

स्तरीय लघुकथा के लिखने हेतु लघुकथाकारों से जितनी सशक्त परिकल्पना की अपेक्षा रहती है। वह सब कुछ रावेन्द्र कुमार 'रवि' की लघुकथा के व्यावहारिक धरातल पर स्पष्ट है। भाषा–शैली, शिल्प और प्रस्तुतीकरण इत्यादि कई दृष्टियों से लघुकथा अपनी विशिष्टता स्थापित करती है। शीर्षक भी कुछ कहता प्रतीत होता है।

विसंगतियों के अतिरिक्त समाज में त्याग, समर्पण, सत्य और ईमानदारी इत्यादि ऐसे कई मूल्य भी हैं जिनके कारण समाज स्वस्थ रहता है। ऐसे कई उदाहरण भी प्राय: मिलते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि समाज निर्माण के मूलाधार यही हैं। किसी व्यक्ति, और विशेषकर युवाओं के अन्दर यह सकार का भाव, वास्तव में सदैव अच्छा कार्य हेतु प्रेरित करता है। शशिभूषण बड़ोनी की लघुकथा 'एडवेन्चर'[18] जहाँ मूल्यों के ह्रासोन्मुखी स्थिति की स्वाभाविक चिन्ता प्रस्तुत करती है, वहीं मानवीय मूल्यों को भी स्थापित करती उल्लेखनीय प्रस्तुति है।

लघुकथा अपने पूर्वाद्ध में उन विद्रूपताओं की ओर संकेत करती है जो आधुनिक मानव के मनोरंजन अर्थात 'एडवेन्चर' से उपज रही है। लघुकथा लेखक 'मैं' और उसके साथी 'एडवेन्चर' के नाम पर हरिद्वार स्नान करने जाते हैं। तभी पानी के तेज बहाव में दस–बारह वर्ष का एक बच्चा बहने लगता है। लघुकथा लेखक का मित्र राकेश अच्छा तैराक होने के उपरान्त भी शान्त भाव से बच्चे को बहते हुए देखता रहता है। वहाँ उपस्थिति लोगों की स्थिति यही होती है। उसी समय सतरह–अठारह वर्ष के दो लड़के पानी में कूदते हैं, और बच्चे को सुरक्षित लाकर उनके माता–पिता को सौंप देते हैं। माता–पिता कृतज्ञ होकर उन दोनों लड़कों को पुरस्कृत करना चाहते है, परन्तु दोनों वहाँ नहीं थे।

संवेदना और मूल्यों की दृष्टि से लघुकथा ठीक है परन्तु शैल्पिक दृष्टि से लघुकथा में बिखराव है, तथापि मानवीय मूल्यों की पक्षधर है जो कि समकालीन हिन्दी लघुकथा का प्रमुख ध्येय है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के पश्चात यह कहना उचित होगा कि उत्तराखण्ड के लघुकथाकारों की लघुकथाएँ अपने कथ्य-तथ्य एवं संरचनाओं में ध्यान आकर्षित करती हैं। इन लघुकथाओं के परिदृश्य पर शिक्षा, समाज, प्रकृति, भौगोलिक परिस्थितियाँ, बालमनोविज्ञान समझने हेतु निश्छल प्रयत्न, भ्रूण हत्या, क्षेत्रीय सामाजिक-सांस्कृतिक विद्रूपता, बस-रेलगाड़ी में मुसलमानों को प्रायः पाकिस्तानी समझने की दकियानूसी सोच, स्त्रियों की गौरवगाथा के पश्चात भी लड़की के जन्म पर मातम छा जाने की कथा, गौ-रक्षा एवं भूख की विसंगतियाँ, लड़कियों के स्वप्न और पारम्परिक-आधुनिक विचारों के मध्य सामंजस्य बिठाकर जी रही शिक्षित कामकाजी लड़की का जीवन, अपने सुख-दुख में उपस्थित है। इस राज्य से प्रकाशित अविराम साहित्यिकी, आधारशिला, उत्तरा, नवल, युगवाणी, शैलसूत्र, सरस्वती सुमन और प्रेरणा-अंशु आदि पत्रिकाएँ भी हिन्दी लघुकथा के विकास में अपनी भूमिका का सुनिश्चित कर रही है।

निश्कर्ष रूप में यह कि उत्तराखण्ड की धरती पर हिन्दी लघुकथा एवं आलोचना कर्म की अनुगूँज प्रारम्भ हो चुकी है जो कि इस विधा एवं राज्य के लिए सुखद है।

सन्दर्भ सूची :

1. ममता कालिया, समकालीन साहित्य समाचार, जनवरी 2019, सम्पादक-सत्यव्रत, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 31, 2. वही, पृष्ठ 31, 3. आचार्य जानकीबल्लभ शास्त्री, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड-5, सम्पादक-मधुदीप, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 200, 4. डॉ0 बलराम अग्रवाल, पीले पंखों वाली तितलियाँ, राही प्रकाशन, दिल्ली भूमिका-सूर्यकांत नागर, 2015, "लैप संख्या एक, संस्करण 2014, 5. डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल, सम्पादक-शोधदिशा, अक्टूबर-दिसंबर 2016, त्रैमासिक, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 05, 6. ललित शौर्य, दैनिक जागरण 'पुनर्नवा', कानपुर, 17 दिसम्बर 2018, सं0-राजेन्द्र राव, पृष्ठ 12, 7. महेन्द्र सिंह राणा, प्रेरणा-अंशु, अप्रैल 2017, सम्पादक--प्रताप सिंह, ऊधम सिंह नगर, पृष्ठ 27, 8. कविता कोश, गूगल, 9. नवीन कुमार नैथानी, बीसवीं सदी : प्रतिनिधि लघुकथाएँ, संपादक-सुकेश साहनी, जनसुलभ पेपरबेक्स, बरेली, संस्करण-सितम्बर 2002, पृष्ठ 46, 10. दिनेश कर्नाटक, पहाड़ में सन्नाटा, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2013, पृष्ठ 07-08, 11. आशा शैली, सृज्यमान, जुलाई-दिसम्बर 2009, सम्पादक-राजेन्द्र साहिल, लुधियाना, पृष्ठ 104, 12. महेश पुनेठा, फेसबुक, 27 जून, 2018, प्रातः 6:56, महेश पुनेठा फेसबुक वॉल, 13. कस्तूरीलाल तागरा, संरचना-5, वर्ष-2012, सम्पादक-डॉ0 कमल चोपड़ा, दिल्ली, पृष्ठ 84, 14 आशा रावत, अविराम साहित्यिकी, अप्रैल-जून 2017, सं0-उमेश महादोशी, रूड़की, पृष्ठ 23-24, 15. रश्मि बड़थ्वाल, संरचना, 2008, सम्पादक-कमल चोपड़ा, दिव्यकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 140, 16. चार्ली चैपलिन, अमर उजाला, प्रवाह, शुक्रवार, 29 अप्रैल 2019, नैनीताल, 17. रावेन्द्र कुमार 'रवि', कब टूटेंगी बेड़ियाँ, सम्पादक- डॉ0 दिनेश पाठक 'शशि', गणपति पब्लिशर्स, दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ 56-57, 18. शशिभूषण बड़ोनी, अभिनव इमरोज, दिसम्बर 2013, सम्पादक-देवेन्द्र कुमार बहल, नई दिल्ली, पृष्ठ 72-73।

खेमकरण 'सुमन', द्वारा श्री बुलकी साहनी, प्रथम कुँज, अम्बिका विहार कॉलोनी,
ग्राम व पोस्ट–भूरारानी, रूद्रपुर, जिला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड–263153
मोबाइल–09045022156, ईमेल– khemkaransoman07@gmail.com

हिन्दी लघुकथा की हीरों का कीमती हार

कथाकार बलराम से लता अग्रवाल की वार्ता

डॉ. लता अग्रवाल

हम शब्द को ब्रह्म मानने वाले लोग है। शब्द ब्रह्म हैं तो हम उनके उपासक। चाहें जुबान से बोलें, चाहे कलम से लिखें, हमें बहुत सोच - समझकर बोलना-लिखना चाहिए ताकि हम जो बोलें-लिखें, वह सामने वाले पर सही और पूरा असर डाले। बोलने वाले कुछ भी बोंले, लेकिन लिखने वाले यह सोचें कि हम शब्द साधना में लीन हैं। तभी उनका लिखना प्रभावपूर्ण हो सकेगा। इसके बिना उच्च स्तर का लेखन संभव नहीं। मनुष्य के जीवन में सतत बाहर और भीतर लड़ाई चलती रहती है।

समकालीन हिंदी लघुकथा का जब भी जिक्र होता है तो बलराम का नाम सबसे पहले आता है, क्योंकि इनकी सक्रियता महज लघुकथा लेखन तक सीमति नहीं। इन्होंने हिंदी लघुकथा को वैश्विक परिदृश्य पर समझने के लिए 'विश्व लघुकथा कोश' और 'हिंदी लघुकथा कोश' का श्रम साध्य काम भी किया। जहाँ तक व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न हैं तो ये जीवन संघर्ष में डूबे गांव से बाहर निकले कथाकार हैं। यही कारण है कि इनके साहित्य में अभाव और विसंगतियों से बाहर निकलने की सर्जनात्मक बेचैनी दिखती है। रचनाओं में इनका बाहरी और भीतरी संघर्ष निंरतर बना रहता है। जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कानपुर में 15 नवंबर, 1951 को जन्मे बलराम की प्रमुख कृतियों में 'कलम हुए हाथ' गोआ में तुम' (कहानी संग्रह) और 'मृगजल' (लघुकथा संग्रह), 'जननी जन्मभूमि' और 'कारा' (उपयान्स), 'मृगजल' (लघुकथा संग्रह), 'माफ करना यार' और 'वो घड़ी न आती काश' (संस्मरण), 'मेरा कथा समय', 'लोक और इतिहास का मिलन' तथा 'स्वाधीनता का महास्वप्न' (आलोचना), 'बातों के बादशाह' (साक्षात्कार) तथा 'औरत की पीठ पर' (रिपोर्ताज) आदि शामिल हैं। 'प्रेमचंद रचनावली' तथा आदिवासी जीवन पर संदर्भ आदि शामिल हैं। 'प्रेमचंद रचनावली' तथा आदिवासी जीवन पर संदर्भ ग्रंथ 'इंद्रावती' आदि दर्जनाधिक ग्रंथों का संपादन किया तो दैनिक 'आज' 'रविवार' और 'करंट' के लिए

रिपोटिंग भी की। कथा पत्रिका 'सारिका' में उपसंपादक होकर कानपुर से दिल्ली आए और फिर 'नवभारत टाइम्स' में साहित्य प्रभारी हुए। संप्रति समाचार पत्रिका 'लोकायत' के संपादक।

सृजनात्मक लेखन के लिए इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से 'साहित्य भूषण सम्मान', हिंदी अकादमी, दिल्ली से 'साहित्यकार सम्मान' मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति से 'शताब्दी सम्मान' मिला तो पत्रकारिता के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान से 'गंणेशशंकर विद्यार्थी सम्मान' भी। एनसीईआरटी की पाठ्यक्रम समिति में रहे और साहित्य अकादेमी की ओर से जर्मनी में भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व किया तो यूनेस्को के अंबेसडर की ओर से दक्षिणी एशियाई राष्ट्रों के लिए प्रस्तावित मुद्रा 'साशिया' के बहुभाषी अभियान से भी जुड़े। साहित्य की विभिन्न विधाओं में काम करने के साथ शिक्षा और पत्रकारिता इनके जीवन के अभिन्न अंग रहे। सुखद संयोग रहा कि तमाम व्यस्ताओं के बावजूद उन्होंने हमें वार्ता के लिए समय दिया। अंतर्राष्ट्रीय साहित्य और कला महोत्सव में भाग लेने भोपाल आए तो हमारे कुछ और सवालों के भी जवाब दिए। पेश है हिंदी लघुकथा पर उनके हुई वार्ता के कुछ अंश।

बलराम जी, सुना है कि बातचीत करते समय आपके शब्द और विचार इतने सीधे होते है कि पाठक-श्रोता और वार्ताकार प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। अपने विचारों के लिखने और बोलने में आप पर्याप्त समय लेते है। ऐसा क्यों करते हैं आप?

लता जी, हम शब्द को ब्रह्म मानने वाले लोग है। शब्द ब्रह्म हैं तो हम उनके उपासक। चाहें जुबान से बोलें, चाहे कलम से लिखें, हमें बहुत सोच-समझकर बोलना-लिखना चाहिए ताकि हम जो बोलें-लिखें, वह सामने वाले पर सही और पूरा असर डाले। बोलने वाले कुछ भी बोंले, लेकिन लिखने वाले यह सोचें कि हम शब्द साधना में लीन हैं। तभी उनका लिखना प्रभावपूर्ण हो सकेगा। इसके बिना उच्च स्तर का लेखन संभव नहीं। मनुष्य के जीवन में सतत बाहर और भीतर लड़ाई चलती रहती है। लेखक दोनों के बराबर का महत्व देते हैं, वही ऊँचाईयों को छू पाते हैं। यही नहीं, जो लेखक समय के साथ उसके परे और पार जाकर लिखते हैं वही कालयजी सृजन कर पाते है। इसलिए शब्दों की साधना जरूरी है।

आपके परिवार में दूर-दूर तक कहीं लेखन नहीं, फिर किसकी प्रेरणा से आपका रूझान साहित्य की ओर हो गया?

संस्मरणों में किताब 'माफ करना यार' में इस विषय पर मैंने विस्तार से लिखा है। आठवें दर्जे में हमारे शिक्षक छोटेलाल श्रीवास्तव ने छात्रों से लिखकर बताने को कहा कि कौन क्या बनना चाहता है? किसी ने गाँधी, किसी ने विवेकानन्द और किसी ने भगत सिंह जैसा बनने का इरादा जाहिर किया, लेकिन अपन सोचते ही रह गये, लिखकर कुछ भी बता न पाए। तब श्रीवास्तव सर ने पूछा 'क्यों, तुम कुछ भी नहीं बनना चाहते?

उनसे क्या कहता, इतनी जल्दी कुछ तय भी नहीं कर पाया। बात आयी-गई हो गई, लेकिन आठवें दर्जे की बोर्ड परीक्षा में हम कानपुर जिले के 'टॉप टेन' छात्रों में नवां स्थान पा गए तो हाई स्कूल करते हुए छात्रवृति मिली। सब लोग आश्चर्य चकित रह गए कि अनपढ़ मां-बाप का

बेटा 'टॉप टेन' में कैसे आ गया! श्रीवास्तव सर के पास जाकर उनके चरण छुये तो शाबासी देते हुए उन्होंने कहा, 'तुमने तो कमाल कर दिया। उस दिन तुमने मेरे उस प्रश्न का कोई उत्तर क्यों नहीं दिया था?चलो, अब बताओ, बड़े होकर क्या बनना चाहते हो?'तब भी मैंने उनसे यही कहा था कि अभी भी तय नहीं कर पाया हूं कि मुझे आखिर बनना क्या है?

लता जी, आप कल्पना नहीं कर सकतीं कि दसवीं करते हुए हमारे पास हाफ पैंट-कमीज तो होते, लेकिन पैरों में जूते-चप्पल न होते। घर से दो किलोमीटर दूर कॉलेज जाते, पशुओं का दाना-पानी करते, खेत जोतते-बोते। भाभी को नहाने के लिए कुएं से दस बाल्टी पानी भरकर देते। फिर भाग-दौड़कर कॉलेज जाते। बारिश हो रही होती तो कभी-कभी भीग भी जाते, लेकिन बदलने के लिए दूसरे कपड़े न होते, लेकिन तब भी पढ़ने-लिखने का हौसला बना रहता। रद्दी वाले से कुछ किताबें ले आता और उन्हें मनोयोग से पढ़ता।

एक दिन एक किताब में मैथिलीशरण गुप्त की कविता पढ़ी- 'कुम्भा का स्वाभिमान', जिस पर उनका परिचय छपा था- 'आप राष्ट्रीय कवि हैं।' श्रीवास्तव सर ने जो प्रश्न पूछा था, उसके जवाब में ही शायद मेरे किशोर मन से निकल गया, 'आप राष्ट्रीय कवि हैं तो मैं अंतर्राष्ट्रीय कवि बनूँगा'।

उस दिन के उस संकल्प के चलते कविता लिखने का प्रयास करने लगा। क्या बना, क्या नहीं बना, यह दूसरी बात है, मगर 'विश्व लघुकथा कोश' निकाला, साहित्य अकादेमी ने भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि के रूप में जर्मनी भेजा अथवा यूरोपीय देशों की मुद्रा 'यूरो' की तरह सार्क देशों की भी एक मुद्रा हो, जो सार्क देशों की अनेकता में एकता को दर्शाता हो, यूनेस्को अंबेसडर का ऐसा प्रस्ताव पेश करता नाम 'साशिया' ठहर गया तो सार्कदेशों की अनेक भाषाओं में इसी नाम से किताब छापी गई। हिंदी किताब के संपादन-प्रकाशन से मैं भी जुड़ा रहा। तब भी लगा था कि किशोरावस्था में लिया गया संकल्प पूरा कर रहा हूं।

आप कहानी, उपन्यास, संस्मरण, यात्रवृत्त, रिपोर्ताज, अनुवाद, भेंटवार्ता और समीक्षा आदि अनके विधाओं के बड़े हस्ताक्षर हैं, जो बड़े कैनवास की विधाएं हैं। फिर लघुकथा से क्यों और कैसे जुड़े?

आरंभ से ही मैंने कई विधााओं में लिखने की कोशिश की, कभी यह नहीं सोचा कि मुझे किसी खास विधा में ही लिखना है। इसीलिए किसी खूंटे से नहीं बंधा, जिसके कई लाभ हैं तो कुछ हानियाँ भी। मेरे पास थोड़ा-थोड़ा सब कुछ है, ये थोड़े-थोड़े मिलकर मुझे क्या बनाते हैं, नहीं जानता, हाँ, जरूर कह सकता हूँ कि किसी लेखक का पत्रकार और संपादक भी हो जाना 'कोढ में खाज' की तरह होता है, जिसका हाल बुरा होता है। कोई लेखक अपने लेखन के साथ कोई पत्रिका निकाले, रचनावली और विश्वकोश जैसे काम भी करता रहे तो उसका सृजनात्मक लेखन पीछे छूटता जाता है, जिसका शिकार मैं भी हुआ। सो, कई विधाओं में मेरी किताबें हैं, पर कम लिख पाता हूँ, लेकिन मेरी कोशिश रहती है कि परफेक्शन के साथ काम करूं। उपन्यास 'कारा' बहुत दिनों तक फंसा पड़ा रहा। आज सोचता हूँ कि कोई एक विधा चुनता तो कुछ और बात होता।

रही बात लघुकथा की तो वह सन् 1970 से लिख रहा हूँ। सन् 1968 में कमल गुप्त ने लघुकहानी आंदोलन शुरू किया तो उनके साथ हो गया, लेकिन लेखक मित्र हाथ पकड़कर लघुकथा की ओर खींचने लगे। सो, लघुकथा से जुड़ गया। उसी के चलते 'कथानामा', 'हिंदी लघुकथा कोश', 'भारतीय लघुकथा कोश' और 'विश्व लघुकथा कोश' निकाले। 'बीसवीं सदी की लघुकथाएं' में हिंदी के दो सौ कथाकार शामिल किए। कुल मिलाकर मेरा उद्देश्य लघुकथा का मानक रूप पाठकों के सामने रखने का रहा। इस सबके पीछे हिंदी लघुकथा के विकास का सपना झिलमिलता रहा। आज लगता है कि अन्य लोगों के साथ मेरे प्रयासों ने भी लघुकथा को कहानी के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया। अब हम कह सकते हैं कि लघुकथा भी कहानी और कविता की तरह महत्वपूर्ण विधा है। आपको जानकर अच्छा लगेगा कि पिछले दिनों विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लघुकथा की स्वतंत्र किताबें उसी तरह से शामिल हो गई, जैसे कहानी और कविता की किताबें पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती है। पाठ्यक्रम की पहली छह किताबें संपादित करने का श्रेय मुझे मिला, लेकिन यह अकेले मेरा काम नहीं है। सैकड़ो लोगों की साधना ने लघुकथा को इस मुकाम तक पहुंचाने में योगदान किया है।

पहली लघुकथा आपने कब लिखी?

पहली कहानी सन् 1969 में तो पहली लघुकथा सन् 1970 में लिखी थी-'आदमी'। पहली बार किस पत्रिका में छपी, ठीक-ठीक याद नहीं। कानपुर छोड़ते समय मेरा सब सामान वहीं छूट गया और कोठरी में पानी भर जाने से सब कुछ सड़-गल गया। पुराना कोई रेकॉर्ड नहीं है मेरे पास। फिर भी, इतना तो याद है कि उसे सन् 1970 में ही लिखा था।

इसे लिखने के पीछे किसी की कोई प्रेरणा रही या...?

लता जी, यह मेरी शुरूआती लघुकथा है। किशोरावस्था की कच्ची उम्र में व्यक्ति बहुत कुछ सोचता रहता है, लेकिन जमीनी सच्चाई से वाकिफ नहीं होता। सोचा करता था कि किसी मजबूर लड़की को जीवन संगिनी बनांऊगा, जाति-धर्म से ऊपर उठकर। नवीं क्लास में एक मुस्लिम लड़की साथ पढ़ती थी, एकदम खामोश रहने वाली। उसे देखकर कुछ-कुछ होने लगता। एक दिन कागज पर तीन शब्द लिखकर उसकी ओर बढ़ा दिए, उत्तर में उसी कागज पर उसने भी दो शब्द लिखकर मेरी ओर बढ़ाये थे कि किसी ने पीछे से झपट कर वह कागज छीन लिया और लड़की के पिता तक पहुंचा दिया, जो कॉलेज के वाइस प्रिंसिपल थे। उन्होंने घर बुलाया और हम दोनों से पूछा कि इस कागज पर ये शब्द तुम दोनों ने ही लिखे हैं? हम दोनों ने सहमति में सिर हिला दिये। थोड़ी देर कुछ सोचने के बाद वे बोले, ''तो तुम दोनों मोहब्बत के चक्कर में पड़ गए?''

फिर मेरी ओर देखते हुए बोले, '' जानते हो, जब तुम आठवीं पास कर गाँव से आये थे तो कानपुर जिले के टॉप टेन छात्रों में थे। इस मोहब्बत की वजह से दसवीं की त्रैमासिक परीक्षा में फेल हो गये हो। यह कोई अच्छी बात नहीं। सो, अब तुम दोनों मेरी बात ध्यान से सुनो-दसवीं, बारहवीं, बीए और एमए में फर्स्ट क्लास लाकर मेरे पास आना। मैं तुम्हारी नौकरी लगवा दूँगा और तुम दोनों की शादी भी कर दूँगा। शर्त सिर्फ एक है कि तब तक तुम आपस में न तो मिलोगे, न ही

किसी भी तरह की कोई बात करोगे। बहरहाल, मैंने उनकी शर्त स्वीकार तो कर ली, लेकिन उस पर खरा नहीं उतर सका। इसलिए उनके पास जाने का सवाल ही नहीं उठा। वे बहुत भले इन्सान थे। चाहते तो उस समय मुझे कठोर दंड दे सकते थे, लेकिन मेरे उस शिक्षक ने बहुत सूझ-बूझ से काम लिया, अन्यथा उस समय हमारी जिंदगी कोई गलत दिशा भी पकड़ सकती थी। आज सोचता हूँ तो लगता है कि अल्हड़ उम्र की उसी नादानी ने मेरे माने में एक संकल्प बो दिया तो जाति-धर्म की दीवारों को तोड़ती लघुकथा 'आदमी लिख मारी।

पहली लघुकथा लिखने की यह पूष्ठभूमि तो बहुत रोचक है। अपने लघुकथा संग्रहों के बारे में कुछ बताना चाहेंगे?

पहले ही बताया कि कम लिखता हूँ। अत: पहला लघुकथा संग्रह 'मृगजल' सन् 1990 में छपा। उसकी आवृत्ति सन् 1998 में 'रूकी हुई हंसिनी' के नाम से हुई, जिसमें कुछ नई लघुकथाएं भी जुड़ी। इधर कुछ लघुकथाएं और लिखी हैं, जिनका संग्रह 'मसीहा की आंखे' आने को है। मैं दरअसल अपनी किताबों की संख्या बढ़ाने में विश्वास नहीं करता। संस्करण-दर-संस्करण वे गुणात्मक रूप से संशोधित और परिवर्धित होती रहती है और प्रकाशकीय व्यवधान के चलते नये नाम ले लेती हैं। दो उपन्यास, दो कहानी संग्रह और एक लघुकथा संग्रह। बस, इतना-सा अफसाना है।

यकीनन साहित्य सहज अभिव्यक्ति से ही निखरता है। प्राय: लेखक बाह्य संघर्षों में उलझे रहते हैं, जबकि आंतरिक संघर्ष को रेखांकित करना ज्यादा चुनौतीपूर्ण होता है। आप कितने सहमत है?

लता जी, बिलकुल सही कहा आपने। अच्छा लेखक वही होता है, जो मनुष्य के बाहर-भीतर दोनों को पढ़ना और व्यक्त करना जानता है। अक्सर भीतर जो हो रहा होता है, उस पर लेखक कम घ्यान देते है। चेहरे पर पसीना आ रहा है, आंखे अंगार हो रही है, मतलब आदमी क्रोध में है, इसे तो कोई भी लिख सकता है, मगर भीतर क्या महाभारत चल रहा है, बाहर से कम ही दिखाई देता है। इसे जानना और लिखना ज्यादा महत्वपूर्ण है। जो लेखक केवल बाहर को ही पेंट करता है, उसका लेखन बहुत उच्च स्तर का नहीं हो पाता। बाहर और भीतर की लड़ाई को जो लेखक बराबर का महत्व देता है, वही साहित्यिक ऊंचाईयों को छू पाता है। अपने समय और समाज के पार जाकर भी जो लेखक लिख पाता है, उसका लेखन ज्यादा महत्वपूर्ण साबित होता है।

कहा जाता है कि प्रतिभा, धैर्य और परिश्रम जैसी योग्यता वाले लेखक के ही वश का है 'लघुकथा' लिखना। आप इससे सहमत हैं?

नहीं, लघुकथा क्या, किसी भी विधा के लिए जरूरी पहला गुण प्रतिभा है, जो कम-ज्यादा सब में होती ही है। बस, उसके अपने-अपने क्षेत्र होते हैं। परिश्रम व्यक्ति स्वयं करता है और धैर्य के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। जहाँ तक लघुकथा की बात है तो यह कम शब्दों में अपनी बात कहने-लिखने की विधा है। हाँ, लघुकथा प्रतिभा, धैय और परिश्रम अपेक्षाकृत अधिक मांगती हैं जिस बात को आप हजार शब्दों में कह सकते हैं, उसे सौ शब्दों में कहना पड़े तो प्रतिभा,

धैर्य और परिश्रम की जरूरत अधिक होगी। उसके आकार को भी सम्हालना होता है- जो एक मुश्किल काम है। उसको पकाने के लिए धैर्य भी अधिक चाहिए होता है। संक्षिप्त होते हुए भी लघुकथा में कथ्य को प्रभावित नहीं होना चाहिए।

लघुकथा और अन्य विधाओं के लेखन में क्या अंतर है। समकालीन लघुकथा लेखन से आप संतुष्ट हैं?

लेखन चाहे किसी भी विधा में हो, कोई विशेष अंतर नहीं होता। विषय और विधा के प्रति गंभीरता और ईमानदारी सभी में आवश्यक होती है। रही बात समकालीन लघुकथा लेखन से संतुष्टि की तो थोड़ा असंतोष तो है, क्योंकि लोगों ने लघुकथा लेखन को प्रसिद्धि का शार्टकट बना लिया है। कुछ लोग रोज एक लघुकथा लिख लेने का दावा करते हैं, लेकिन उन्हें समझना होगा कि रोज लघुकथा लिखने और छापने से कोई लेखक बड़ा नहीं हो जाता। रचना में दम होना चाहिए। कई लोग खुद को लघुकथा का मसीहा सिद्ध करने में लगे हैं। उनकी गतिविधियों से हमारा काम और कठिन हो गया, क्योंकि लोगों ने लघुकथा को गंभीरता से लेना छोड़ दिया। इससे लघुकथा का बड़ा नुकसान हुआ। हमारा प्रयास लघुकथा को शिखर की प्रतिष्ठा दिलाने का रहा। लघुकथा का कैनवास छोटा होता है और हम जानते है कि दोहा तो दोहा ही रहेगा। लेखकों का बड़ी सर्जना से जुड़ना जरूरी होता है।

मतलब लघुकथा लेखकों का बड़े कैनवास की विधाओं का जुड़ा होना लाभदायक होता है। किसी ने कहा है कि लघुकथा में कचरा बहुत है। लगता है कि जो कुछ भी नहीं लिख सकता, वह लघुकथा पर हाथ भांजने लगता है। आप क्या सोचते हैं?

महाराष्ट्र के हिंदी व्यंग्यकार शंकर पुणतांबेकर मेरे लिए पिता तुल्य थे, गंभीर और गहरी समझ रखने वाले। पुणतांबेकर जी कुछ भी लिखने में बहुत सोच-समझकर आगे बढ़ने की बात कहते थे। उन्होंने 'श्रेष्ठ लघुकथाएं' संचयन निकाला था, जिसमें उनसे जुड़कर काम करने का अवसर मिला। सन् 1978 में वह संचयन हमारे कानपुर के साहित्य रत्नालय ने छापा था। बहुत सोच-समझकर आगे बढ़ने की उनकी बात के पीछे छिपी वजह यह थी कि जल्दबाजी में लिखने के चलते लेखक स्वयं को समय ही नहीं दे पाते। फौजी बनने के लिए कठिन प्रशिक्षण जरूरी होता है, उन्हें रात-दिन मशक्कत करनी पड़ती है, लेकिन साहित्यकार बनने के लिए लोग सोचते हैं कि कागज-कलम उठाई और बन गये लेखक, जबकि कला के किसी भी अनुशासन में तीन बातें जरूरी होती हैं-प्रतिभा, धैर्य और श्रम, जो ज्यादातर लोगों में नहीं होता, इसीलिए कम लोग ही बेहतर लेखन कर पाते है। लोग सोचते है कि प्रसिद्धि पाने का आसान तरीका लघुकथा लेखन है, जिसमें कुछ भी लिख दिया, गोष्ठियों में पढ़ दिया, पत्र-पत्रिकाओं में छपा दिया, पुस्तक रूप में ले आए और हो गए प्रसिद्ध, लेकिन हम जानते है कि साधना कर कोई-कोई ही पीर हो पाता है।

बहुत बड़ी बात कह दी आपने, लेकिन लघुकथा में बड़े आलोचक क्यों नहीं हैं, उसमें कोई बड़ा काम क्यों नहीं हो सका?

एकदम सही सवाल उठाया आपने लता जी। लघुकथा में समीक्षा और आलोचना का काम कम हुआ है। शकुंतला किरण ने लघुकथा शोध और आलोचना की पृष्ठिभूमि तैयार की। फिर कमलकिशोर गायेनका, अशोक भाटिया, बी.एल.आच्छा और बलराम अग्रवाल ने भी इस दिशा में काम किया है। कुछ नाम और भी होंगे, लेकिन कम ही हैं। कारण कि लघुकथा लिखने वाला लेखक निबंधकार, कहानीकार, उपन्यासकार होते हुए अच्छा समीक्षक-आलोचक भी हो सकता है, लेकिन सिर्फ लघुकथा समीक्षक होकर कोई भी लेखक अधर में लटका रह जा सकता है। शायद इसीलिए लघुकथा आलोचना का काम पिछड़ा हुआ है। किसी भी विधा में समीक्षा कर्म करना तलवार की धार पर चलने जैसा है। मैंने बीसियों बरस पुस्तक समीक्षाएं कीं, जिसका परिणाम यह हुआ कि घर में पुस्तकों का अंबार लगता चला गया, जिसे संभालने में घर वालों के पसीने छूटते रहे। दूसरी तरफ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय जैसे लेखकों ने अपनी किताबों पर समीक्षाएं पढ़कर मुझसे बातचीत तक बंद कर दी। मध्यप्रदेश के एक कथाकार मित्र (जिनकी कहानियों पर फिल्में भी बनीं) अपनी किताब पर 'रविवार' में छपी समीक्षा पढ़कर ऑफिस आए और गुस्से में मेरी टेबल पर कलम तोड़ते हुए बोले, ''लो साले, तुम ही बने रहो लेखक, मैं हमेशा के लिए लेखन छोड़ रहा हूँ।'' और उन्होंने लिखना छोड़ दिया। कहने का मतलब यह कि समीक्षक बनने में मिलता क्या है, लेखकों से जीवन भर का बैर! ऐसे में कोई क्यों करे समीक्षा कर्म।

समीक्षा और आलोचना, ये दो शब्द बार-बार सुनने में आते हैं-लेखन के परिष्कार के लिए कौन अधिक महत्वपूर्ण है?

समीक्षा और आलोचना, दोनों अलग काम हैं। आपकी किताब पढ़कर किसी ने कुछ लिखा, आपको पसंद आया या नहीं आया, यह तो हुई समीक्षा, लेकिन किसी लेखक की सारी या कुछ किताबें पढ़कर अन्य लेखकों से उसकी तुलना कर निष्कर्ष निकालना आलोचना है। आलोचना का कैनवास अपेक्षाकृत बड़ा होता है। आलोचना सैद्धांतिक होती है, जिसमें साहित्य की चर्चा करने के लिए सैद्धांतिक बिन्दुओं का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिए आलोचकों को रामचन्द्र शुक्ल की 'चिंतामणि' जैसी कृतियों का अध्ययन कर सीखना होता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा और नामवर सिंह की कृतियों का अध्ययन नये आलोचकों-समीक्षकों को जरूर करना चाहिए। तभी वे समीक्षा और आलोचना का अलग मतलब समझ सकते है। समीक्षा के लिए आपने कोई नयी किताब पढ़ी, वह आपको कैसी लगी, आपने लिख दिया, खुद पर पड़े प्रभाव की बात कर ली और अपना निष्कर्ष दे दिया। हो गई समीक्षा। आपने यह भी पूछा है कि लेखन के परिष्कार के लिए समीक्षा या आलोचना में से कौन बेहतर है। लता जी, इनके बारे में मेरी समझ सीमित है और मै इसका सही उत्तर देने का अधिकारी भी नहीं, क्योंकि मैंने समीक्षाएं की हैं। आलोचना का फलक बड़ा होता है। वह मेरे वश का नहीं।

जीवन के किसी सच का उद्घाटित करना ही लघुकथा का उद्देश्य है। 'लघुकथा' को किन शब्दों में परिभाषित करेंगे?

साहित्य की सभी विधाएं जीवन के किसी न किसी सच को उद्घाटित करती हैं। लघुकथा के सिर पर यह सेहरा मत बांधिए लता जी, पहले तो मैं परिभाषाओं पर यकीन नहीं करता, दूसरे, यह काम आचार्यो का है। मैं साधारण लेखक हूँ। फिर भी, आप पूछ ही रही है तो 'लघुकथा' को परिभाषित करने के लिए मेरे पास खास कुछ नहीं है। हम खेती-किसानी करने वाले लोग हैं तो लघुकथा को अपने तरीके से समझते-समझाते हैं। हम गमले में फूल उगाते है, उसे 'लघुकथा' कह सकते है, क्यारी में उगे फूलों का 'कहानी' और खेतों में उगे फूलों की फसल को उपन्यास मान सकते हैं अर्थात लघुकथा का क्षेत्र गमले जितना, कहानी का क्यारी जितना और उपन्यास का खेत के बराबर हो सकता है।

अद्भुत! रोचक और आसान तरीके से परिभाषित कर दिया आपने। इसके तकनीकी पक्ष पर कुछ कहना चाहेंगे?

लघुकथा में आप कैरेक्टर को डेवलप नहीं कर सकते, कैरेक्टर की बात ही लिखी जा सकती है। लघुकथा की कुछ सीमाएं होती हैं, मर्यादाएं भी। जो लेखक उन्हें जानते हैं, वही अच्छी लघुकथाएं लिख सकते हैं।

आपने 'विश्व लघुकथा कोश' का संपादन किया, जिसमें एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका और भारत की भाषाओं की लघुकथाओं को समाहित किया, जिसने हिंदी लघुकथा को अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य दिया। इस ऐतिहासिक काम का हिंदी लघुकथा में कितना सदुपयोग हुआ?

मेरे संपादित 'हिंदी लघुकथा कोश', 'भारतीय लघुकथा कोश' और 'विश्व लघुकथा कोश' का सदुपयोग भारत के लोगों ने खूब किया। उनमें से लघुकथाएं निकाली और अपनी अलग किताबें तैयार कर लीं। उनके सदुयोग-दुरूपयोग से कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी इच्छा थी लघुकथा पर बड़ा काम करने की। साहित्य की किसी भी विधा के विकास के लिए वैश्विक दृष्टि जरूरी होती है। लोग जानें कि अपनी भाषा और देश के बाहर के लेखक कैसी लघुकथाएं लिख रहे हैं, इस विधा को लेकर वहां क्या स्थिति हैं? इस सब को पढ़ने और समझने के लिए अनुवाद करने और कराने की जरूरत थी। सो, हमने बरसों बरस यह काम किया और कराया। मेरे मन में दबी-छिपी इच्छा 'विश्व लघुकथा कोश' के माध्यम से पूरी हुई। इस काम में कितना सफल हुआ, नहीं जानता। बस, काम करके आगे बढ़ गया, क्योंकि उसके बाद 'प्रेमचंद रचनावली' के इससे भी बड़े काम में लगना था। उसी प्रकाशक का वह काम भी समय पर हो गया और प्रेमचंद के गांव लमही में उपन्यासकार शिवप्रसाद सिंह के समक्ष लिया गया मेरा संकल्प भी सिद्ध हुआ।

कहते हैं कि आलोचक-समीक्षक एक विशिष्ट पाठक होता है। इस विशिष्टता को कैसे समझाएंगे?

देखिये, किताबें छपती हैं तो पाठक बनते हैं, जिनमें कुछ सामान्य होते है, कुछ सुधी और कुछ ज्यादा गंभीर। पाठक बताता है कि उसे क्या अच्छा लगा, क्या खराब। आलोचक से उम्मीद की

जाती है कि उसे यह ज्ञान हो कि यह विधा कब आरंभ हुई, कौन इसका पहला लेखक है, इस विधा की विशेषताएं क्या हैं, इसके महारथी कौन-कौन रहे। जिस लेखक की बात वह कर रहा है, इस विधा में वह कहाँ बैठता है, बैठता भी है कि नहीं? विधा के इतिहास में उसका नाम लिखा जा चुका है, उसे जितनी हाइट पुराने लोग दे चुके हैं, क्या इस लेखक का लेखन का स्तर या उससे भी आगे का है? सबसे बड़ी बात यह कि उसका लेखन जेनुइन है या फेक। ज्यादातर रचनाएं अक्सर जेनुइन नहीं होतीं और लोग कहते है कि हमें साहित्य में स्थान नहीं मिला। कुछ ही लोग होते हैं, जो असाधारण होते हैं, जिन्हें ज्यादातर लोग पसंद करते हैं और वही लोग किसी भी विधा के साहित्य में स्थान पाते हैं। अधिकतर लोग साहित्य के मान, प्रतिमान और मूल्य जानते ही नहीं। वे रचनाओं के उत्पादन में लगे रहते हैं। कुछ लेखकों के उपन्यासों की लाखों प्रतियाँ बिक जाती है, किन्तु वे साहित्यकार की श्रेणी में नहीं आ पाते। दरअसल साहित्य के मन्दिर में किसी को आसानी से प्रवेश मिलता नहीं है। इसके लिए लेखक को लगातार साधना करनी होती है। जो इस साधना के जरिए सिद्ध हो लेते हैं, वही प्रसिद्ध हो पाते हैं। उन्हें ही साहित्य के मंदिर में प्रवेश मिल पाता हैं दूसरी बात यह कि किसी का लिखा सब कुछ अच्छा नहीं होता, उसी तरह किसी का सब कुछ बुरा भी नहीं होता। प्रसाद ने प्रेमचन्द की अपेक्षा कम लिखा, लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रसाद का महत्व प्रेमचन्द से किसी भी तरह कम हैं।

बड़ी अच्छी बात कही आपने। सन् 1985 में आपका 'कथानामा' आया था। समकालीन लघुकथा के उस और सम-सामयिक दौर में क्या अंतर पाते है?

समकालीन शब्द व्यापक है। समकालीन और सम सामयिक अलग-अलग है। सम सामायिक तुरंत असर करने वाला, समकालीन दस-बीस बरस रहता है। हम नहीं कह सकते कि सभी पुराने अच्छे थे और सभी नये नहीं हैं। जो साहित्य अपने को समय और देश से जोड़े रखता है, वही जीवित रहता है। बिना देश-काल के कोई कृति दूर तक नहीं जा सकती। विगत तो रहेगा, मगर तस्वीर आज की होगी। तीन तलाक, धारा 370, भीड़ तंत्र की हत्या आदि विषय पहले नहीं थे, किन्तु अब है। इन्हें लघुकथा में आना चाहिए, यह समय की मांग है। इन्हें सम सामयिक कह सकते हैं।

अर्थात सम सामयिक विषय साहित्य में प्रवेश पाने चाहिए। सन् 2003 में 'बीसवीं सदी की लघुकथाएं' के अंतर्गत आपके चार संकलन 'हथेली पर पहाड़', पहाड़ पर कटहल', 'पाप और प्रायश्चित' तथा 'कारीगर के हाथ' आए। संपादकीय के रूप में लघुकथा पर लिखे आपके लंबे-लंबे सारगर्भित लेख विधा के लिए जरूरी सिद्ध हुए। इनसे निकले नवनीत का यहां आस्वादन नहीं करना चाहेंगे?

नवनीत नहीं कहूँगा लता जी, हिंदी लघुकथा का नवनीत तो वह होगा जो पिछले सौ साल की लघुकथा के इतिहास को मथकर निकाला जाएगा। हमने तो हरिनारायण की पत्रिका 'कथादेश' में पुरस्कृत ताजा लघुकथा लेखकों तक को शामिल कर लिया। कुछ मोती मिले, कुछ छूट भी गए

होंगे। फिर भी 'बीसवीं सदी की लघुकथाएं' के चारों खंडो की संपादकीय में इंगित कुछ बातें और अच्छी लघुकथाएं ऐसे बेशकीमती हीरे हैं, जिन्हें दुनिया की किसी भी मंडी में मुंह मांगे दाम मिल सकते हैं। रही बात नवनीत की तो मैंने कुछ ज्यादा नहीं किया। बड़े लोगों ने बड़ी लघुकथाएं लिखी हैं, मैने तो सिर्फ मुंशीगिरी की। सबको एकत्र कर 'बीसवीं सदी की लघुकथाएं' नाम से दो सौ लेखकों का रजिस्टर बना दिया, जिसमें रचना और आलोचना दोनों एक साथ है। उसे बड़ा काम माना गया, लेकिन इसमें महत्व मेरा नहीं, संग्रहीत रचनाकारों का है। वहां अपनी तो केवल धार है, जिसमें हिंदी लघुकथा को सतत धारा दिखाने की कोशिश भर है।

जानती हूँ कि आप अपनी प्रशंसा नहीं सुनते। जहां आप किसी किताब का प्रकाशन मात्र एक बड़ी समस्या है, वहां आपके कहानी संग्रह 'कलम हुए हाथ' के 11 संस्करण हुए, जो वाकई एक मिसाल है। बधाई, लेकिन हमारे जैसे लेखकों को भी कुछ मार्गदर्शन दें ताकि हमारा लेखन भी आपकी तरह सराहा और पढ़ा जाए?

क्या बताऊँ लता जी, जिनके हाथ से बहुत-सी किताबें निकलीं, वही आपका दिशा निर्देश कर सकते हैं। मेरे पास तो बहुत सीमित लेखन है। कभी-कभी किसी की कोई एक किताब इतनी हिट हो जाती है कि लोग आह-वाह करने लगते हैं। मेरी कृति 'कलम हुए हाथ' ऐसी ही निकल गई। उसका नाम बड़ा हो गया, लेखक से भी बड़ा। इसमें ग्रामीण जीवन की मेरी कहानियाँ हैं, ग्राम जीवन के अनुभव। इधर के बरसों में जब किताबघर प्रकाशन, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रभात प्रकाशन, अमन प्रकाशन, साहित्य भंडार और कल्पना प्रकाशन ने मेरी चुनी हुई कहानियों के अनेक संचयन प्रकाशित कर दिए तो अपने घर खाने पर बुलाकर प्रेम भारद्वाज से पूछा कि प्रेमचन्द की तरह आप हर प्रकाशक से कैसे छप जाते हैं? मुझे लगता है कि यह प्रकाशक मित्रों का प्रेम ही हैं, जिसके चलते दूर-दूर तक फैले देश के पाठकों तक मेरी कहानियाँ पहुँच रही हैं। 'कलम हुए हाथ' की प्रसिद्धि मेरे लिए खुशी का सबब है, लेकिन 'गोआ में तुम' और 'माफ करना यार' को भी पाठकों का वैसा ही प्यार मिला है। उनके भी कई-कई संस्करण हुए। 'माफ करना यार' को तो महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की पत्रिका 'बहुवचन' ने हिंदी की पंद्रह श्रेष्ठ संस्मरण कृतियों में गिना दिया।

आप अनेक लघुकथाकारों के पसंदीदा लेखक हैं, लेकिन अपना पसंदीदा लेखक किसे मानते हैं, जरा उसका नाम तो बताइए?

बहुत मुश्किल सवाल है। भारतीय भाषाओं के साथ दुनिया भर के हजारों लेखकों को पढ़ा तो किसी का कुछ अच्छा लगा, किसी का कुछ। कुछ लेखकों के नाम लेना गलत होगा। सो, नाम लेने की जिद न करो।

'बहू का सवाल' 'मृगजल', पाप और प्रायश्चित,' 'गंदी बात' और 'मसीहा की आंखे' जैसी आपकी लघुकथाएं पढ़ी। जानना चाहती हूँ कि लघुकथा लेखक विषय को किस दृष्टि से देखें कि उनकी लघुकथाएं भी आपकी लघुकथाओं की तरह सार्थक हो

सकें?

लता जी, मैंने बहुत कम लिखा है। इसलिए किसी को दिशा निर्देश नहीं दे सकता। जो लिखा, बड़े लेखकों को पढ़-पढ़कर सीखा। किसी से भाषा, किसी से शिल्प, किसी से चरित्र गढ़ना और किसी से रचना को हाइट्स पर ले जाने की विधि सीखी। बस, उसी से किसी तरह मेरा काम चल गया। क्षमा करें, वैसी योग्यता मुझमें नहीं कि किसी को अच्छा और सार्थक लिखने के सूत्र दे संकू। हां, किसी बड़े लेखक का साथ मिल जाए तो उससे संस्कार मिल सकते हैं, जो मुझे कामतानाथ से मिले। लेखकों को यह जरूर करना चाहिए- 'गुरू बिन मिले न ज्ञान'।

फिर भी, आपके पास अनुभव तो है ही, जिसके आधार पर नए लेखकों के लिए कोई संदेश तो दे ही सकते हैं?

संदेश से एक बात याद आयी। हरिवंश राय बच्चन से कहा था, 'आपसे ऐसी बात पाना चाहता हूँ, जिसे जीवन में उतार सकूँ।' सुनकर हंसते हुए बोले, 'बलराम, मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है, जिसे तुम अपने जीवन में उतार सको। हां, एक अरबी गुरू का संदेश तुम्हें देता हूँ, जिसे जीवन में उतार सको तो जरूर उतारो'।

'जानती हो, उन्होंने क्या कहा था।'

'क्या कहा था?'

'एक शेर लिखने के लिए एक लाख शेर पढ़ो।' वही बात समकालीन लेखकों से आज मैं कहना चाहता हूं, खासकर कथा-लघुकथा लेखकों से।

बड़ी उपयोगी बात आपको दी थी बच्चन जी ने। आज कई लेखक पैसे देकर पुस्तकें छपा रहे हैं। इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

देखिए,वहाँ रूपया काम करता है, साहित्य का स्तर नहीं। किसी भी लेखक के लिए यह स्थिति बहुत दुखद होती है। नये लोगों के लिए तो ऐसा करना क्षम्य है, लेकिन बुजुर्ग लेखकों को भी ऐसा करना पड़े तो बहुत बुरा लगता है, लेकिन क्या करें, व्यवस्था ने स्थिति ही इतनी खराब कर दी है कि किताबों का छप पाना कठिन होता जा रहा है।

साहित्य में सम्मानों-पुस्कारों को किस दृष्टि से देखते हैं?

सम्मानों का कुछ महत्व तो है ही, जो लेखकों को एहसास कराते रहते हैं कि वे कुछ और बेहतर करें। हां, वहां मार-काट बहुत है। चाहे वामपंथी हों या दक्षिणपंथी, सब अपने-अपनों को ही रेवड़ियां बांटते रहते हैं। इसलिए ज्यादातर पुस्कारों की विश्वनीयता नहीं बची।

लघुकथा के क्षेत्र में बेहतरी के लिए और क्या हो सकता है?

लघुकथा में काव्य तत्वों का अभाव है। सूखी-सूखी कथाएं मैं पसंद नहीं करता। मेरी पीढ़ी में केशव, उदयप्रकाश और प्रियंवद के कथा लेखन में हमें कविता भी मिलती है। मैं

विशुद्धतावादी नहीं हूँ, यह सोच मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे लगता है कि लेखकों की विधाओं के बीच आवाजाही बनी रहनी चाहिए, जैसे उत्तर भारत के लोग दक्षित भारत जाते हैं और दक्षिण के लोग उत्तर में आते हैं। कौन-सा बीज समुद्र में तैरते हुए किस किनारे पहुंचकर अपना अस्तित्व निर्मित कर दे, नहीं कह सकते। इसलिए विशुद्धता से बचें। खुद को बांधकर रखेंगे तो अनुभवों का टोटा होगा। लघुकथा में कविता और व्यंग्य भी लाइए ताकि वह और भी रोचक तथा बेहतर हो सके। चैतन्य त्रिवेदी के लघुकथा संग्रह 'उल्लास' में यह संभव हुआ तो देखिए, कैसे अपने लघुकथा को पहली बार विधा का सम्मान और दर्जा दिला दिया।

सुना है कि आपने लघुकथा को कहानी और कविता की तरह विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लगवा दिया हैं?

कहानी और कविता की तरह लघुकथा को भी अलग से विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाने के लिए हमने कई संचयन तैयार किए हैं, जिनमें से कुछ राजकमल प्रकाशन से छपकर पाठ्यक्रम में लग गए हैं, लेकिन यह मेरा नहीं, सबका संयुक्त प्रयास है। चालीस बरस पहले लघुकथा को कहानी जैसा सम्मान दिलाने के लिए 'काफिला' को संपादित करते हुए हमने जो सपना देखा था, उसे मूर्त होकर संपन्न होते देखना संतोष दे रहा हैं, लेकिन पिछले बरसों में हमने जो लघुकथा संकलन संपादित किए , उनमें यह नहीं देखा था कि किसका कितना मूल्य है, सिर्फ संकलन कर दिया था, लेकिन विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के लिए हमने संचयन तैयार किए हैं।

लघुकथा के विकास की कोई और योजना हैं?

हां, हिंदी लघुकथा की हीरे चुनकर 'बड़ी किताब' तैयार की है, जो दुनिया की बड़ी भाषाओं में अनूदित होकर हिंदी कथा की आभा को आलोकित करेगी। मेरा लघुकथा संग्रह 'मसीहा की आँखें' भी आना है।

जी, इंतजार करूंगी।

धन्यवाद।

डॉ. लता अग्रवाल। संपर्क : 73 यश विला, भवानी धाम फेस–1, नरेला शंकरी,
भोपाल–462041 (मध्य प्रदेश) मो. : 09926481878

'मूल्य' आम सामाजिक की धमनियों में दौड़ रहे होते हैं-

धर्मेन्द्र कुमार हरसिंह भाई राठवा की डॉ० बलराम अग्रवाल से बातचीत

बलराम अग्रवाल

इसी तारतम्य में, लघुकथा की बात भी करते हैं। दुनिया में लिखित रूप में प्राप्त पहला दस्तावेज 'वेद' को माना जाता है। ऋग्वेद में 10-11 ऐसे सूक्त मुझे मिले हैं, जिन्हें हम सीधे-सीधे 'कथा' कह सकते हैं। इनमें 'यम-यमी' संवाद तो सर्वविदित और बहुपठित है ही, उसके अलावा 'लोपामुद्रा-अगस्त्य' आदि अनेक के परस्पर संवाद भी कथात्मक ही हैं। ऋग्वेद में वे क्योंकि केवल 'सूक्त' रूप में हैं, इसलिए वेद के बाद उपनिषद और पुराण आदि कालों में कल्पना का भी पुट दिया जाकर, सूक्त से प्रोन्नत कर इन्हें कथारूप दिया गया।

धर्मेन्द राठवा : सर, पहला सवाल- आप 'साहित्य' को किन शब्दों में परिभाषित करेंगे।

बलराम अग्रवाल : साहित्य का सम्बन्ध मस्तिष्क और हृदय दोनों से है। कुछ स्थितियों में मस्तिष्क हमारे निर्णयों पर हावी रहता है और कुछ में हृदय। मैकेनिक की भाषा में बोलें, तो मनुष्य के मस्तिष्क की बंद खिड़कियों और जंग लगे कब्जों को खोलने, स्मूथनेस देने का काम करने वाले 'टूल-किट' का नाम 'साहित्य' है। इस किट में केवल पेंचकस और रिंचेस ही नहीं हुआ करते, कुछ केमिकल्स भी हुआ करते हैं। इसीलिए पूर्वजों ने 'धूपं दीपं दर्शयामि' और 'गंधं आघ्रयामि' यानी धूप, दीप दिखाता हूँ, गंध सुँघाता हूँ, जैसे पद भी लिखे हैं। चेतना की कौन-सी खिड़की को कब खुलना चाहिए, उस खिड़की के कौन-से स्क्रू को कब कसा हुआ या ढीला रहना चाहिए- इन सवालों से लगातार टकराने और इस काम को अंजाम देने वाले 'व्यक्ति' का नहीं, 'मस्तिष्क' का नाम 'साहित्यकार' है। 'व्यक्ति' के रूप में तो हम सब सामान्य ही होते है, मस्तिष्क के रूप में विलक्षण रहते हैं। समाज में साहित्यकार कभी कथाकार, कवि, निबंधकार आदि अनेक भूमिकाओं में अलग-अलग तो कभी एक-साथ नजर आता है। इस तरह, उसकी तुलना हम एक विशेषज्ञ प्लम्बर से या रसायन अभियंता से कर सकते हैं। लोगों के बीच उनकी सामूहिकता में वह सिर्फ आइना लेकर नहीं घूमता, धूप-दीप-गंधा

वाली टूल-किट भी साथ रखता है।

धर्मेन्द राठवा : सर, साहित्य की विभिन्न विधाओं के बीच आपने कहानी, कविता, बालसाहित्य आदि विधाओं में लेखन किया है; लेकिन मुख्यतः 'लघुकथा' सम्बन्धी लेखन-चिंतन को ही आपने अधिक चुना है। मैं भी लघुकथा के एक विषय पर शोधरत हूँ। जानना चाहता हूँ कि लघुकथा का अतीत में क्या स्वरूप और भूमिका रही है?

बलराम अग्रवाल : दुनियाभर में कितनी ही गुफाएँ खोजी जा चुकी हैं, जिनकी भित्तियों पर आदिकालीन मानवों द्वारा बनाये गये चित्र अपने पूर्व रंग, रूप और आकार में विद्यमान हैं। इनकी आयु 40 हजार वर्ष से लेकर 60-70 हजार वर्ष भी आँकी जाती है। इससे सिद्ध यह होता है कि मनुष्य ने अभिव्यक्त होने की शुरुआत संकेत-चित्र बनाकर की। भित्तियों पर उसने अपने अनुभव-क्षेत्र के पशुओं, पक्षियों, पेड़-पौधों के चित्र बनाये और यथासम्भव उनमें रंग भी भरे। रंगों की खोज और आविष्कार, दोनों ही मनुष्य की चेतना के बढ़ते कदमों की ओर इशारा करते हैं। इन चित्रों को उसने 'अक्षरों' के रूप में प्रोन्नत किया, अक्षरों को जोड़कर उपयुक्त शब्द बनाये। इस तरह, मानवीय अभिव्यक्ति चित्रों की बजाय शब्दों में व्यक्त होने लगी। इस दृष्टि से देखें, तो 'अक्षर' भी 'चित्र' ही हैंय जिन्हें हम वाचिक परम्परा के लिखित संकेत-चिह्न कह सकते हैं।

इसी तारतम्य में, लघुकथा की बात भी करते हैं। दुनिया में लिखित रूप में प्राप्त पहला दस्तावेज 'वेद' को माना जाता है। ऋग्वेद में 10-11 ऐसे सूक्त मुझे मिले हैं, जिन्हें हम सीधे-सीधे 'कथा' कह सकते हैं। इनमें 'यम-यमी' संवाद तो सर्वविदित और बहुपठित है ही, उसके अलावा 'लोपामुद्रा-अगस्त्य' आदि अनेक के परस्पर संवाद भी कथात्मक ही हैं। ऋग्वेद में वे क्योंकि केवल 'सूक्त' रूप में हैं, इसलिए वेद के बाद उपनिषद और पुराण आदि कालों में कल्पना का भी पुट दिया जाकर, सूक्त से प्रोन्नत कर इन्हें कथारूप दिया गया। उर्वशी और पुरुरवा तथ शुन:शेप आदि की कथाएँ वैसा ही विस्तार हैं। शुरू-शुरू में ये उतने विस्तृत नहीं रहे होंगे, जितने आज मिलते हैं। जिस तरह कथा का जन्म वेद-सूक्त के रूप में हुआ था, वैसे ही उसका विस्तार भी शनैः शनैः ही हुआ होगा-यह तर्कसंगत है। आख्यायिका से भी पहले सूक्तों के विस्तार का कोई कथारूप अवश्य ही रहा होगा जो कालान्तर में लुप्त हो गयाय लेकिन 'पंचतंत्र' की कथाओं के रूप में उस रूप की छाया हमारे पास विद्यमान है। उस छाया की छवियाँ संसार की लगभग सभी समृद्ध भाषाओं के कथा-साहित्य में मिलती हैं। यह स्वरूप केवल 'लघुकथा' का नहीं, समूचे कथा-वांग्मय का रहा है। प्रारम्भिक समाजवेत्ताओं की चिन्ता और आवश्यकता क्योंकि मानव-समाज को एकजुट और नैतिक बनाये रखना रही होगी, इसलिए वही भावभूमि पूर्वकालीन लघुकथाओं की हमें मिलती है।

धर्मेन्द राठवा : और वर्तमान में लघुकथा की स्थिति और भूमिका क्या है?

बलराम अग्रवाल : समकालीन लघुकथा ने मुख्यतः अपना आकार अपनी परम्परा से

ग्रहण किया है, यह निर्विवाद है। वर्तमान समय में छपने वाली डिमाई आकार की पुस्तक में एक-दो पंक्ति से लेकर सामान्य रूप से पठनीय फोंट साइज और सामान्य लाइन स्पेस के साथ आमने-सामने के अधिकतम दो पृष्ठों तक इसकी आकार-सीमा मानी जा रही है; तथापि इसका तात्पर्य यह कतई नहीं होना चाहिए कि रचना की एक-दो पंक्तियाँ अगर दूसरे पेज से भी आगे चली गयीं तो उसे लघुकथा नहीं कहा जायेगा। यह तो रही स्थिति की बात। अब, भूमिकाय तो वर्तमान में लघुकथा की वही भूमिका है, जो किसी भी साहित्य-रूप की होनी चाहिए। अतीत में, भले ही यह मात्र रंजन की विधा रही हो अथवा नैतिक और धार्मिक उद्‌बोधन कीय आज यह उद्वेलन की विधा है। आज उसी लघुकथा को श्रेष्ठ माना जाता है जो वर्तमान समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध सोचने को प्रेरित भी करती है और बाध्य भी।

धर्मेन्द राठवा : सर, अक्सर कहा जाता है कि लघुकथा को सकारात्मक प्रभाव वाली होना चाहिए। हम सभी इस विचार से सहमत हैं। लेकिन यह भी कहा जाता है कि समकालीन लघुकथा के कथ्य में, उसके निर्वाह में, स्थापना में गुणात्मक परिवर्द्धन की आवश्यकता है। मेरा सवाल है कि इन दिनों सामने आ रही लघुकथाओं में गुणात्मकता को रेखांकित करने का आधाार क्या होगा और उस आधार को तय करने का दायित्व या अधिकार किनका होगा?

बलराम अग्रवाल : बहुत ही अच्छा सवाल है। लघुकथा के सकारात्मक प्रभाव वाली होने पर आप एकदम स्पष्ट हैं, इसलिए उस पर बोलने की आवश्यकता नहीं है। लघुकथा के कथ्य में, निर्वहन में, मूल्य-स्थापना में गुणात्मक परिवर्द्धन की आवश्यकता आज लघुकथा के चिंतक-आलोचक ही महसूस नहीं कर रहे, बल्कि सामान्य पाठकों की ओर से भी यही पुकार आ रही है। 'कथ्य' किसे कहते हैं, यह जानना आज के लघुकथाकार की जैसे जरूरत ही नहीं है। लेखकों के इसी लापरवाह चरित्र के कारण लगभग समान तरह के कथानक पाठक को झेलने पड़ रहे हैं, जिन्हें पढ़ते हुए वह उकताहट महसूस करता है और चीख-सा उठता है कि उसे कुछ नया चाहिए। उसकी यह चीख हमें सुननी चाहिए। यही लघुकथा में उसका गुणात्मक परिवर्द्धन की माँग करना है। जिस लघुकथा में उसे अपनी यह माँग लेशमात्र भी पूरी होती दिखायी देती है, उसकी बाँछें खिल जाती हैं, कंठ से अनायास ही 'वाह' फूट पड़ती है। ध्यान रखिए, गुणात्मक परिवर्द्धन की माँग करने वाले 'सामान्य पाठक' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो मनोरंजन के लिए राजहंस, रानू, वेद प्रकाश शर्मा को भले ही पढ़ता हो, तृप्ति के लिए मोहन राकेश, भीष्म साहनी, कमलेश्वर आदि की ओर आता है। स्पष्ट है कि वह 'सस्ते' यानी चीप और 'स्तरीय' यानी गुणपरक लेखन के बीच अन्तर को अच्छी तरह जानता-समझता है। गुणपरकता को परखने का मूल आधार वे 'मूल्य' होते हैं, जो नैसर्गिक रूप से इस आम सामाजिक की धमनियों में दौड़ रहे हैं। रचना पर गुणपरक होने, न होने की पहली मुहर यही लगाता है। रचना के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह 'आलोचक' कहे और माने जाने वाले प्रबुद्ध की तुलना में 'सामान्य' कहा और माने जाने वाला यह प्राणी बहुत पहले कर चुका होता है, भले ही अपने मन-बुद्धि की बातों को व्यक्त करने की साहित्यिक टर्मिनोलॉजी से वह अपरिचित ही रहता हो।

धर्मेन्द राठवा : लघुकथाएँ आज काफी विषयों पर लिखी जा रही हैं, फिर भी क्या आपको लगता है, कोई ऐसा विषय है जिन पर अभी तक लेखन नहीं हुआ है?

बलराम अग्रवाल : लेखन के विषय अधिकतर समय-सापेक्ष होते हैं। कोई लेखक जब किसी ऐतिहासिक/पौराणिक घटना/पात्र को रचना में स्थान देने का विचार बनाता है, तब उसके पीछे भी उक्त घटना/पात्र के माध्यम से 'आज' को प्रस्तुत करने की दृष्टि काम कर रही होती है। लघुकथा के विषय भी समय-सापेक्ष ही हैं। लेकिन लघुकथा-लेखन हेतु विषय चुनते समय एक बात जरूर याद रखनी चाहिएय वो यह, कि लघुकथा के फॉर्म में किसी भी विषय की प्रस्तुति एक जटिल प्रक्रिया है। खुलते जाने की जितनी छूट कथाकार को कहानी देती है, लघुकथा उतनी नहीं देती। यह कॉम्पेक्ट यानी सुसंबद्ध होने और वैसा ही बने रहने की पक्षधर विधा है। वर्तमान समय में अधिकतर लघुकथाकारों पर 'गिने-चुने विषयों से बाहर न आने' का आरोप लगता रहा है। उसका कारण यही है कि वे अपने समय की उस गहराई में उतरकर नहीं लिख पा रहे हैं, जिसमें उतरने की अपेक्षा लघुकथा के समकालीन पाठक को उनसे है।

धर्मेन्द राठवा : लघुकथा विधा को और सशक्त होने के लिए क्या आवश्यक है? अधिक से अधिक लघुकथा लेखन, लघुकथा सम्मेलनों का आयोजन या कुछ और?

बलराम अग्रवाल : लघुकथा विधा को और सशक्त होने के लिए मेरी दृष्टि में जो बातें आवश्यक हैं, वो मुख्यत: इस प्रकार हैं-

1. 'स्वतंत्र लेखक' होने का तमगा सीने पर लटकाए घूमने की बजाय लेखक को व्यापक अर्थों में स्वतंत्र मानसिकता का होना चाहिए। विचारधारा-विशेष से बँधा लेखक 'सर्वहिताय' नहीं लिख सकता।
2. अपने सामाजिक सरोकारों का ज्ञान हो और मर्यादापूर्वक उनके निर्वहन के प्रति सचेत भी रहता हो।
3. अपनी मानसिक स्वाधीनता को बचाए रखने के प्रति सचेत और अभिव्यक्त होने के प्रति साहसी हो।
4. अपने समय की सभी विधाओं में अभिव्यक्ति पा रहे विषयों, शैलियों और शिल्पों से गुजरते रहने का अभ्यस्त हो।

धर्मेन्द राठवा : वर्तमान समय में समीक्षा से लघुकथा-लेखन में सुधार की कितनी सम्भावना देखते हैं आप ?

बलराम अग्रवाल : धर्मेन्द्र, समीक्षा और आलोचना में तत्त्वत: कुछ अन्तर है। वो यह कि समीक्षा अपने आप को रचना तक ही सीमित रखती है। उसकी गहराई में जाने की जरूरत उसे नहीं महसूस होती। आलोचना कथ्य के समूचे सिनेरियो को देखकर उस पर बात करती है। इस अन्तर के मद्देनजर देखा जाये तो लेखन में सुधार की जो गुंजाइश आलोचना से बनती है, वह गुंजाइश समीक्षा से अनुपातत: नहीं ही रहती है।

आलोचना की प्रक्रिया में कृति की व्याख्या कभी-कभी उतना विस्तार पा जाती है, जितना कि स्वयं रचनाकार ने भी नहीं सोचा होता। ऐसा होना किंचित भी गलत नहीं है; लेकिन यह तभी सम्भव हो पाता है जब आलोचक कथ्य के विषय का गहरा ज्ञाता हो। पूर्व-प्रचलित नाटक, कविता, उपन्यास, कहानी विधाओं के अनेक आलोचक इस स्तर के रहे हैं। इन दिनों भी हैं; लेकिन लघुकथा को वे उपलब्ध नहीं हैं। उस ऊँचाई तक अपनी लघुकथाओं को अभी शायद हम पहुँचा नहीं पाए हैं।

अध्ययन और अनुभव के आधार पर हर व्यक्ति की दृष्टि का विस्तार होता है, चीजों को समझने का उसका विजन बढ़ता है- यह अटल सत्य है। लेकिन 'नाम' और 'दाम'- ये दो लालसाएँ भी इस मार्ग में आ जुड़ती हैं। सभी तो नहीं, लेकिन इन लालसाओं की चपेट में आकर कुछ लोग, वे रचनाकार भी हो सकते हैं और विचारक भी, विचारधारा-विशेष से जा जुड़ते हैं। अतीत बताता है कि विचारधारा विशेष से जुड़कर अनेक लोगों ने 'नाम' भी कमाया और 'दाम' भीय लेकिन बहुत-से जेनुइन रचनाकारों और विचारकों को इन्होंने आगे नहीं आने दिया, यह तथ्य भी समय-समय पर सामने आता रहा है। तात्पर्य यह कि विचारधारा-विशेष व्यक्ति को संकुचित करती है, विवेकशील नहीं रहने देती। यह भी कह सकते हैं कि विचारधारा-विशेष, वह कोई भी हो, 'स्वतंत्रता' और 'जनोत्थान' के अपने अलग मानक और परिभाषाएँ गढ़ लिया करती है और 'जेहाद' के हिंसक मार्ग पर चल निकलती है।

धर्मेन्द्र कुमार हरसिंहभाई राठवा, शोधार्थी हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल, विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्या नगर–388120, जिला – आणंद (गुजरात)
मो. : 9879345581, ई–मेल : dh.rathva83@gmail.com

✧ ✧ ✧

वरिष्ठ साहित्यकार आदरणीय रामदरश मिश्र जी की यह लघुकथा ई-मेल की त्रुटियों के कारण अधूरी छप गई थी। लघुकथा के इस विशेष अंक में यह कहानी पुनः प्रकाशित की जा रही है.....!

हे! प्रभु

डॉ. रामदरश मिश्र

किसी ने माँ को बताया कि निजामुद्दीन के पास एक साधु रहते है वे बड़े प्रतापी है। उनके आशीर्वाद से पुत्र प्राप्त हो सकता है। वसुंधरा जी उस आदमी के साथ साधु के यहाँ पहुँची। एक खाली सुनसान जगह में साधु की झोपड़ी थी। आस-पास पेड़ पौधे बिखरे हुए थे। वसुंधरा जी पहुँची तो बाहर तीन साधु बैठे थे। वसुंधरा जी ने उनसे कहा-हमें संत जी का दर्शन करना है''। एक साधु बोला ''बैठिए अभी वे पूजा में लीन है''।

श्रीमती वसुंधरा देवी बहुत पेरशान थीं कि उनकी बहू दिव्या के बेटे की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो रहा है। लगातार तीन बेटियाँ ही पैदा हुई। उन्होंने पोते की प्राप्ति के लिए मनौतियां मानी, जोग टोट करवाए, पूजा-पाठ करवाए लेकिन मनोवांछित फल नहीं मिला। बेटा प्रपुल्ल समझाता रहा-माँ तुम बेट के लिए इतनी परेशान क्यों हो रही हो, बेटियाँ भी तो अपनी ही संतान है। आजकल बेटियाँ बेटों से अधिक लायक निकल रही है। उन्होंने एक मित्र का संदर्भ दिया। बताया कि उन्हें भी शुरू में तीन बेटियाँ मिली। उनके बाद लड़का पैदा हुआ तो घर में खुशी छा गई। अब स्थिति यह है कि तीनों बेटियाँ पढ़-लिख कर उच्च पदस्थ हो गई और बेटा बारहवीं पास करने के बाद आवारा और नशेड़ी हो गया। बेटियाँ माँ-बाप का सहारा बनी हुई है और बेटा सिरदर्द बन गया है। जबर्दस्ती पैसा लेकर फूँक रहा है। गुस्से में घर के सामान तोड़ रहा है।

माँ कहती- ''हां बेटे लेकिन सारे बेटे तो ऐसे नहीं होते। बेटियाँ तो अपने-अपने घर

चली जाती है बचता है बेटा ही ना''

''माँ कुछ भी हो, अपने हाथ में क्या है। बेटा बेटी पैदा करना अपने अधिकार में तो नहीं है ना तो जो ईश्वर दे रहा है उसी में संतोष करना चाहिए।''

लेकिन माँ को पोता चाहिए ही। बेटे की किसी बात का उनपर असर नहीं हो रहा था।

किसी ने माँ को बताया कि निजामुद्दीन के पास एक साधु रहते है वे बड़े प्रतापी है। उनके आशीर्वाद से पुत्र प्राप्त हो सकता है। वसुंधरा जी उस आदमी के साथ साधु के यहाँ पहुँची। एक खाली सुनसान जगह में साधु की झोपड़ी थी। आस-पास पेड़ पौधे बिखरे हुए थे। वसुंधरा जी पहुँची तो बाहर तीन साधु बैठे थे। वसुंधरा जी ने उनसे कहा-हमें संत जी का दर्शन करना है''। एक साधु बोला ''बैठिए अभी वे पूजा में लीन है''।

कुछ देर बार भभूत रमाए साधु जी निकले। चेलों ने कहा- ''गुरू जी ये लोग आपके दर्शन के लिए आए हैं''।

''आओ बच्चों बोलो क्या समस्या है?''

''महात्मा जी, ये वसुंधरा जी है। इनकी बहू को बेटियाँ ही पैदा हो रही है। ये बेटा चाहती है।'' साथ का आदमी बोला।

''हाँ महात्मा जी मैं बेटे के लिए आशीर्वाद लेने आई हूँ।

साधु जी ने ध्यान लगाया। कुछ मंत्र बुदबुदाए। फिर बोले- ''जा देवी इस बार तुम्हारी बहू को बेटा ही होगा।''

''धन्यवाद महात्मा जी बहुत-बहुत धन्यवाद। आपकी क्या सेवा करूं।''

''अरे कुछ नहीं रे जब बेटा पैदा हो जाए तब आना।''

वसुंधरा जी खुशी-खुशी घर लौटने लगीं और साथ वाले आदमी से कहा- ''आपने इस महात्मा का पता बता कर बहुत उपकार किया है। इस महात्मा में कोई लोभ नहीं है। मुझसे कुछ नहीं चाहा।''

और इस बार बहू को बेटा ही पैदा हुआ। साधु के प्रति बसुंधरा का विश्वास और भी सघन हो गया। बेटे ने कहा- ''माँ यह साधु वाधु की कृपा से नहीं हुआ है। इसे होना ही था। अपने आप हुआ है।'' लेकिन वसुंधरा जी अपने इस विश्वास पर अटल थी कि यह साधु के आशीर्वाद से ही हुआ है। अत: वे एक दिन साधु के दर्शन को चली गई। बेटे का समाचार सुनकर साधु बहुत प्रसन्न हुआ और उसे लग गया कि उसके प्रति औरत का विश्वास अटल हो गया है।

वसुंधरा जी ने साधु से फिर पूछा- आपकी क्या सेवा करूँ।

वसुंधरा जी ने जब यह प्रस्ताव अपने बेटे को सुनाया तो बेटा बहुत झल्लाया। बोला- ''माँ वह साधु नहीं धूर्त है। यह सब मत करो।''

लेकिन वसुंधरा जी नहीं मानीं। वे सवा तोला सोना, सवा किलो गुंधा हुआ आटा और एक बोतल मदिरा लेकर साधु की आरे चल पडीं। बेटा प्रफुल्ल अपने एक साथी को लेकर माँ के पीछे-पीछे चुपचाप चल पड़ा। माँ तो साधु के यहाँ सामान लेकर चली गईं और प्रफुल्ल और उसका दोस्त सौ गज की दूरी पर एक पेड़ के नीचे ठहर गए। उन्हें प्रतीत हुआ कि आस-पास से गुड़ गुड़ गुड़ गुड़ आवाज आ रही है। वे ध्यान से सुनने और समझने लगे कि आखिर यह है क्या? उन्हें प्रतीत हुआ कि एक पत्थर के बड़े टुकड़े के नीचे से आवाज आ रही है। उन्होंने पत्थर उठाया तो देखा एक गड्ढ़ा है, उसमें एक पाइप लगा है। उसमें से शराब बहती हुआ आ रही है। और गड्ढ़े में गिर रही है। गड्ढ़े में सोने का टुकड़ा भी दिखाई पड़ा। तो यह मामला है साधु का। प्रफुल्ल ने गड्ढ़े में हाथ डाल कर सोने के टुकड़े निकाल लिये और साथी के साथ घर आ गया।

बात यह थी कि साधु एक चौकोर वेदी के नीचे एक छेद किए हुए था। वह उसमें गुधा हुआ आटा गोल करके रखता था। उस आटे में छेद करके उसमें सोने का टुकड़ारख देता थ, फिर शराब गिराता था। सोने का टुकड़ा गिर कर पाइप में आ जाता था और साधु बाद में आकर निकाल लेता था और आटे की रोटी बना कर चेलों के साथ खाता था। उस दिन शाम को प्रफुल्ल अपने कई साथियों के साथ साधु के पास पहुँचा और सबने मिल कर साधु और उसके चेलों की धुनाई कर दी। साधु चेलों सहित भाग निकला।

वसुंधरा जी ने प्रफुल्ल से कहा- ''बेटा आज साधु ने बुला रखा है। उसने कहा था कि सप्ताह भर बाद आना, मैं ऐसा मंत्र दूँगा कि अब पोता ही होगा।''

''मत जा माँ वह साधु नहीं ढ़ोंगी था। उसे हमने मार कर भगा दिया। गनीमत हुई उसे पुलिस को नहीं दिया।''

''यह तुमने क्या किया बेटा? तुमने अच्छा नहीं किया।''

फिर प्रफुल्ल ने उसके ढोंग की असलियत माँ के आगे खोल दी। और वह सोना भी उन्हें पकड़ा दिया जो कि साधु को दे आई थी। वसुंधरा ने माथा पीठ लिया। बोली- ''हे प्रभु यह सब क्या है?''

डॉ. रामदरश मिश्र, आर–38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059
दूरभाष : 28563587, मो. : 9211387210

डोमिन काकी

चित्रा मुद्गल

गाँव आती रहती थी गर्मियों की छुट्टियों में। अब की आयी तो छह बरस की उम्र में पहला दर्जा पास कर। गाँव का जीवन अब उसमें कौतुक उपजाने लगा था। दादी खटोले पर बैठी कठोते में रखी लाल मिर्चियों का ढेंपुर तोड़, सींक से उसमें मसाला भर रही थी। वह मोटी-मोटी लाल मिर्चियाँ छूने को हुई कि दादी ने उसे बरज दिया, ''मिर्चों में हाथ मत दे देना बिट्टो! आँख नाक छू गये कि आग लग जाएगी। ततैया-सी नाचती फिरेगी घर भर में।''

तभी उसकी नजर दहलीज पार कर आँगन में घुसती हुई डोमिन पर पड़ी। डोमिन अटारी पर बनी टट्टी और आँगन से लग नर्दवा को साफ करने आयी थी।

खटोले से लगी खड़ी वह उचककर चिल्लायी, ''ददिया! ददिया! देखो डोमिन आयी है।''

चुटकी में दबी मिर्च छोड़ दादी ने तड़ाक से उसके गाल पर तमाचा जड़ा, ''कब सीखेगी मान टान... ऐसे बुलाते हैं बड़ी बूढ़ियों को! रिश्ते में रतनी काकी लगती है.... तेरी काकी। डोमिन काकी कहा कर इसे, समझी!''

उसकी आँखों में भल्ल-भल्ल आँसू चूने लगे। बिना मारे भी तो गलती सुधारी जा सकती थी। उसे क्या मालूम कौन उसका क्या लगता है, क्या नहीं?

हफ्ता बीत गया। फिर से डोमिन काकी से सामना हुआ। हम उम्रों के साथ वह आँगन में गिटक खेल रही थी।

नजर पड़ते ही उसने मुस्कुराकर हाथ जोड़ दिये। प्रत्युत्तर में डोमिन काकी ने दोनों हाथ उठा उसे आशीषा।

काम से निबट डोमिन काकी कोंछ के लिए वहाँ पर बैठी ही थी कि उसके खेल में व्यवधान डालते हुए दादी ने उसे पुकारा, ''तनिक इधर तो आ बिट्टो?''

उसके निकट आते ही उसके नन्हें हाथों में अनाज भरी टोकनी पकड़ा और ऊपर कलेवा के लिए बासी पनेथियाँ रख दादी ने आदेश दिया, ''जा, सरियरके ले जा और रतनी के कोंछ में डाल आ।''

उसे पास आता देख प्रसन्न डोमिन काकी ने अपना कोंछ पसार दिया।

सावधानीपूर्वक उसने टोकनी उलट दी उसके कोंछ में। फिर भी दो-चार मुट्ठी अनाज बाहर छिटक गया।

टोकनी जमीन पर टिका वह अनाज सरियाने में डोमिन काकी का हाथ बँटाने लगी।

अचानक झपटती हुई-सी दादी आयी और झुककर उसके गाल में तमाचा जड़ चिल्लायी, ''बेशऊर मूरख...., छू लिया तूने रतनी को?''

उसकी सिसकन की उपेक्षा करती हुई दादी उसे नहान घर की ओर खींच ले गयी और वहीं से उन्होंने बड़ी काकी को पुकार कर दोनों के ऊपर गंगाजल छिड़कने और दो बाल्टी पानी स्नान के लिए रख देने को कहा।

स्वयं नहा लेने और उसे नहला देने के बावजूद दादी का गुस्सा शान्त नहीं हुआ। चेतावनी देती हुई सी बोली, ''आइन्दा ख्याल रहे बिट्टो, रतनी को कुछ भी देने के लिए कहूँ तो दूर से देना, छूना मत उसे...।''

सहमी हुई सी वह दौड़कर बड़ी काकी की गोद में छिप गयी। अबोध मन में प्रश्न कील-सा ठुक गया। बड़ी काकी की गोद में वह मुँह दिये बैठी है, दादी ने खींचकर उसे थप्पड़ क्यों नहीं मारा?

आतंकवाद

सुबह,

जब भी अख़बार आँखों के आगे फैलाती हूँ

शब्द-शब्द

अपनी कोख को

क़त्ल हुआ पाती हूँ...

बयान

हफ्ते भर बाद नींद से टूटी वर्दी शरणार्थी शिविर में मेज लगाये दंगा पीड़ितों से उनकी फरियाद सुन रही थी।

रिपोर्ट लिखी जा रही थी.....।

सामने पेश हुई औरत को हिचकियाँ घेरे हुई थीं। वर्दी के आश्वासन से निर्भय होने की चेष्टा करती वह मुँह खोलने की कोशिश करती कि लगातार उफ़ान झेलती... आँखों का ज्वार उसकी जुबान पर मुठ्ठी कस देता। घुटी-घुटी-सी चीखों में औरत की थग्रती देह भँवर लेने लगती। वर्दी झुँझलायी। और बोलेगी नहीं तो वे भला कब तलक उसका मुँह खुलने की बाट जोहते अन्य पीड़ितों की पीड़ा से मुँह फेरे रहेंगे? उजड़ी, फुँकी, तबाह बस्तियों में से कोई एक घर देहरी भर ही तो उनके जिम्मे नहीं! दसियों दफ़े, पुचकार समझा चुके। अब डर कैसा? वह है न! जो भी घटा उसे सिलसिलेवार बेखौफ बताएँ। न्याय मिलेगा उसे।

औरत ने मुँह खोलने की एक और असफल कोशिश की।

वर्दी ने फुर्ती से उसके आशय को शब्द दिये।

तुम यही कहना चाहती हो न, दंगइयों का शोर जीना पार कर जैसे ही तुम्हारे दरवाजे पहुँचा। दहशत से काँपते तुम सब अपने सोने वाले कमरे में जाकर बन्द हो गये? तुम, तुम्हारा मर्द, तुम्हारा बेटा और तुम्हारी कमसिन बेटी.... खूबसूरत बेटी। लिख लें?

दंगईयों ने दरवाजा खुलवाने को पहले आवाज़ें लगायी। थापें दीं, लातों से कूटा, दरवाजा न खुला तो फिर उसे कुल्हाड़ी से चीर धराशायी कर दिया। दाखिल हुई भीड़ ने घर के कोने-कोने को टोहा। सोने वाले कमरे की सिटकनी चढ़ी पा उस दरवाजे को भी चीर गिराया। पहली नजर अलमारी की आड़ में छिपे खड़े तुम्हारे बेटे पर पड़ी। उनकी कुल्हाड़ी उठने से पहले ही बेटे ने बालकनी से छलाँग लगा दी। तीसरे माले से नीचे गिरते ही उसने आँखें मूँद लीं। दिल का मरीज तुम्हारा मर्द, यह सदमा न झेल पाया और उनकी कुल्हाड़ी उठने से पहले ही कूच कर गया। सही है न, लिख लें?

तुम पर नजर पड़ते ही तुम्हारे मुँह में उन्होंने तकिए का गिलाफ़ ठूँस बड़ी बेदर्दी से तुम्हें बालों से घसीटते हुए ले जाकर गुसलखाने में बन्द कर दिया। सिर से पल्ला हटा जरा अपने बाल दिखाओ? बड़े मजबूत हैं! हाँ, तो... तुमने गुसलखाने से बेटी की लगातार चीखें सुनीं। पुकार रही थी तुम्हें, अम्माँ हमें बचा लो! तुम्हारा अनुमान है, छह-सात लोगों से कम ने उसके साथ कुकर्म नहीं किया होगा। गुत्थी सुलझ नहीं पा रही। छह-सात लोगों ने उसके संग जबरई की होती तो बेटी

लाश बनी पड़ी मिलती। घर के अन्य सदस्यों की लाशें बरामद हो गयीं- तुम्हारी बेटी की लाश बरामद नहीं हुई। दंगईयों के जाने के बाद डेढ़-दो घण्टे बाद ही पुलिस गुसलखाने से मुक्त करा तुम्हें शरणार्थी शिविर ले आयी थी। यही हुआ था न! तनिक सोचकर बताओ, आखिर वह कहाँ गयी होगी, कहाँ जा सकती है, उसे हम कहाँ ढूँढ़ें?....

''हमारा ख्याल है....''

''ठहरिए दरोगा जी, हमारे मुँह में जुबान है।...''

मेज के उस ओर बैठी वर्दी को औरत की खून भरी आँखों ने घूरा।

वर्दी ने अचानक औरत की आँखों से उछले खून के कुछ छींटों को सकपका कर वर्दी से झाड़ा।

''वाह! तुम तो बोल सकती हो! हम समझे बैठे थे कि तुम गूँगी हो। बहरहाल, मुँह में जुबान है तो बिना समय नष्ट किय जल्दी से बताओ- तुम्हारी बेटी आखिर कहाँ होगी?''

''आपके घर में दरोगा साहब।''

''तेरा दिमाग तो नहीं चल गया औरत?''

औरत गरजी, ''क्यों, आपके घर में बेटी नहीं है?''

''मेरे घर में मेरी बेटी है....''

''न, वो मेरी बेटी है... मेरी बेटी की चलती फिरती लाश! घर जाइए दरोगा साहब और उस बच्ची को गौर से देखिए। मेरी बेटी बरामद हो जाएगी...''

शिविर में सन्नाटा छा गया...

चित्रा मुद्गल

गुड़ चाउर

उषा किरण खान

रूपनगर के राजा के यहां बेटी की शादी होने वाली थी। मुसहर और मुसहरनी दिन भर वहां साफ सफाई की मजदूरी करते थे। दोनों को जोमजदूरी मिलती वह मिल बांटकर खाते थे। एक दिन रात के पहले प्रहर में मुसहर मुसहरनी दोनो रोटी खाकर बैठे गप शप कर रहे थे कि रोशनी बाजा से लैस बारात गुजरने लगी। आगे आगे बजवैया फिर नचवैया और तब हाथी घोड़ा पालकी सब थे। आधा घंटे तक बारात गुजरती रही ये टकटकी लगाकर रोशनी आतिशबाजी देखते रहे। बारात चली गई सामने से। मुसहरनी ने लम्बी सांस ली। मुसहर ने कहा

''बड़ी रौनक लगेगी आज दरबार में चलोगी देखने?''

''हम कैसे देखेंगे?''

''अरे, अगल बगल से और क्या?''

रोशनी ही देखना है तो वो यहीं देख लिया। ''सो तो है।''

हम तो सोच में डूब गसे जी ''मुसहरनी ने गाल पर हाथ रख कहा काहे? क्या सोच?'' पूछा उसने

''अरे, इतने लोग जो राजा के यहां जा रहे हैं वे क्या खायेंगे?''

''ये तो सोचने वाली बात है'' वह भी सोचने लगा

बड़ा संकट है।

तुमने चावल तो काफी फटका होगा। पूछा

''हां चार बड़ी कोठिलों में भरकर रखी हैं।''

गुड़ भी चार पांच मोड़ा रखा है''

हां तो?''

''अरी बुरबक, राजा है, घर में चावल है गुड है, वही सारा बांटकर खिला देगा। चिंता किस बात की?''

हां सो तो सही कह रहे होय अब चिंता दूर हुई। ''– दोनों ने चौन की सांस ली''

उषा किरण खान, 1, आदर्श कॉलोनी, श्रीकृष्ण नगर, पटना–800 001
मो. : 9334391006

✧ ✧ ✧

बत्ती गुल

बलराम अग्रवाल

हिन्दी साहित्य, कला और संस्कृति के संरक्षण की पत्रिका का कार्यालय। सम्पादक और उप-संपादक। आमने-सामने। बीच में-प्रकाशन के लिए प्रेस को भेजी जाने वाली पत्रिका की फाईनल फाइल।

''अध्यक्ष जी की बाकी रचनाओं का क्या किया?''

''डस्टबिन दिखा दी।''

''डस्टबिन? ओए..... दिमाग खराब है तेरा?''

''खराब है, तभी तो यह एक लगी रहने दी। वरना इसमें भी, है क्या पढ़ने लायक?''

''समझता क्यों नहीं है? ट्रस्ट के सारे मेम्बर्स पर होल्ड है उसका!''

''हुआ करे।'' उप सम्पादक चिढ़कर बोला, ''पॉकेट साइज का हिन्दी संस्करण.... साला...। देवसरे, दिनकर, प्रेमचंद.... सब जैसे उसकी जेब में आ बैठे हैं अध्यक्ष बनते ही! ...और, आ बैठे हैं तो आ बैठा करें; मगर... । सुनिए शुक्ला जी, एक अंक में एक व्यक्ति की एक ही रचना जानी चाहिए, है कि नहीं? और उसूल तो यह है कि स्तम्भकार के अलावा किसी भी व्यक्ति को अगले अंक में दोहराया नहीं जाना चाहिए।''

''तेरी सारी बातें सही हैं मेरे बापय लेकिन...'' सम्पादक ने हाथ जोड़े।

''लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, शुक्ला जी....'' नौजवान खून में थक्के नहीं पड़ते, वह ब्लॉक नहीं होताय लेकिन यह अड़ गया, ''नौकरी दूसरी मिल जाएगी, लेकिन जमीर एक बार वेंटीलेटर पर पड़ गया, तो समझो हमेशा के लिए पड़ गया। अगला अंक पूरा का पूरा इस कुत्ते-कमीने पर केन्द्रित कर लेना, मैं चूँ नहीं करूँगाय क्योंकि उस समय मैं यहाँ रहूँगा ही नहीं। लेकिन, इस अंक की तो डमी यही रहेगी।''

''अरे यार!..... तूने अपनी तरफ से कर दिया न, जो करना था? अब जा.... जाकर अपनी सीट पर बैठ। मैं इसे भेजता हूँ प्रेस में।'' कुर्सी के हत्थे पर रखे तौलिए से संपादक ने अपनी पेशानी का पसीना पोंछते हुए बड़े प्यार से उसे टरकाया।

वही कार्यालय। सम्पादक और उप सम्पादक। आमने-सामने। बीच में.... पत्रिका की मुद्रित प्रति। साथ में इस्तीफा।

आखिरी कलाम

कामिनी की आँखों में उन्हें इज्जत देने जैसी कोई चीज कभी दिखाई नहीं दी, वह अलग बात है; लेकिन आज तो उसने हद ही कर दी! न राम-राम न दुआ-सलामय कमरे में उनका कदम पड़ते ही बरस पड़ी- ''आप इधर मत आया करो, प्लीज!''

वे चौंक गये। गोया कि उनके अधिकार को चेलैंज कर दिया गया हो। गले से एकाएक निकला- ''क्यों?''

इस तल्ख सवाल का उसने कोई जवाब नहीं दिया। मुँह बिचकाकर रसोई की ओर बढ़ गयी।

वे उसके पीछे-पीछे नहीं गये। ड्राइंग रूम बना रखी लॉबी में पड़े सोफे पर पसर गये।

चलता-फिरता मोहल्ला नहीं था, कि आते-जाते हर किसी पर पड़ोसियों की नजर गड़ती हो। सोसाइटी थी। सिक्योरिटी गार्ड्स सब पहचानते थे, सो वे बिना रोक-टोक चले भी आते थे। यह एक वन-रूम सेट था, जिसमें वह किरायेदार थी और वे मालिक मकान।

औपचारिकता के मद्देनजर, कुछ ही देर बाद वह रसोई से निकल आयी। ट्रे में कोल्ड ड्रिंक भरा एक गिलास और काजू भरी एक प्लेट साथ थी।

''ऐसा क्यों कहा तुमने?'' काजू उठाकर मुँह में रखते हुए उन्होंने सवाल किया।

''मुझे पसन्द नहीं है, इसलिए!'' उसने दृढ़ता से कहा।

''पसन्द नहीं है, मतलब!'' वे बोले, ''मैं चला आता हूँ... कि दूसरे प्रांत से आयी अकेली लड़की हो। हजार तरह के लोग सोसाइटी में रहते हैं। हजार तरह की बातें आये दिन अखबारों में और न्यूज चौनल्स पर आती रहती हैं। कल को कुछ ऊँच-नीच हो गया तो... आँच तो मुझ पर भी आयेगी न!''

''उस ऊँच-नीच के डर से ही आपको समझा रही हूँ, सर।'' कामिनी ने कहा, ''पढ़ी-लिखी कामकाजी लड़की हूँ। दूसरे प्रांत, दूसरे शहर में जाकर कैसे रहना है, सब सीख रखा है। बदन नुचवाना और कपड़े फड़वाना बिल्कुल भी पसन्द नहीं है मुझे!''

''मुझसे कह रही हो यह बात, मुझसे!'' आश्चर्य के उच्च शिखर से वे चीखे, ''कपड़े फाड़ने की छोड़ो, मैंने अपना एक पोर भी कभी लगाया तुम्हें?''

''एक बार नहीं, हजार बार!'' वह संयत स्वर में बोली, ''आते ही खुद को नंगा करना और मेरा बदन नोंचना शुरू कर देते हो। विनय बाबू, पोर और नाखून सिर्फ उँगलियों में नहीं होते...!''

उनके कानों की लवें धधक उठीं यह सुनकर। नजरें नहीं उठा पाये। काजू भरी प्लेट की

ओर दूसरी बार बढ़ता हाथ एकाएक रुक गया। गिलास की भीतरी सतह पर जमे कोल्ड ड्रिंक के छोटे-छोटे बुलबुले चटकने और फूटने लगे थे। एक झटके से वे उठे और.....

''अगले महिने के आखीर तक.... खाली कर देना यह सेट!'' कहते हुए बाहर निकल गये।

काली रेत

''हाँ बबुआ, कल कुछ कह रहे थे...?'' अलाव की जड़ में फूँक मारते हुए मंगलू ने सवाल किया। 8-10 लोग अलाव को घेरे बैठे थे। पता नहीं चला, सवाल किससे हुआ है।

20-30 मजदूरों ने बरगद के एक घने पेड़ के नीचे अस्थाई 'टेक' बनाई हुई है। इनमें से सुबोध 3-4 दिन पहले ही यमुना किनारे, नगर निगम के एक पार्क में दिहाड़ी माली की नौकरी पर लगा है।

मंगलू अस्सी पार कर चुका है। वह यहीं रहकर दूसरे रहवासियों के छोटे-मोटे सामान की रखवाली करता है और चाय-पानी किस्म की खुली दुकान भी चलाता है।

''तुम्ही से पूछ रहा हूँ!'' अलाव सुलग चुका तो गरदन उठाकर वह सुबोध से मुखातिब हुआ।

''आज भी वही-सब मिला काका....'' जवाब में सुबोध एकाएक बोला, ''जगह-जगह काली रेत की ढेरियाँ!''

''तो?''

''नेवलों की करतूत लगती है।'' सुबोध ने कहा, ''इंजीनियर से कहकर जमीन के भीतर कैप्सूल दबवाने पड़ेंगे।'' कहकर वह बुदबुदाया, ''रोज-रोज कहाँ तक उन्हें छितराऊँगा!''

''जिस पारक में काम पर लगे हो न बेटा, उसमें पचासों साल पहले काम करके छोड़ चुके हैं हम..... चूहा और नेवला मारने की दवाई के डिरम के डिरम इन हाथों से सरका चुके हैं...''

''कमाल है!'' सुबोध के मुँह से निकला।

''कमाल ये नहीं है,'' मंगलू त्यौरियाँ चढ़ाकर बोला, ''कमाल तो वो था, जो हो चुका।''

''क्या हो चुका?''

''राजा सगर का नाम तो सुने ही होगे?'' उसने बताना शुरू किया, ''चक्करवर्ती बनने के चक्कर में अनगिनत लड़ाइयाँ लड़ीं उसने। लक्खों सिपाही दूसरी सेनाओं के मारे, तो हजारों अपने भी मरे ही होंगे?''

''जरूर।''

''उनमें से किसी एक की भी मुक्ति के लिए उसका दिल पसीजा हो, हमने तो नहीं सुना कभी। लेकिन जब अपने खुद के लाल भसम हुए, तो उनकी मुक्ति के लिए फड़फड़ा उठा पट्ठा!'' इतना कहते हुए मंगलू तनिक रोषभरी आवाज में बोला, ''दुक्ख क्या होता है, शोक किसे कहते हैं, बड़े लोगों को तभी पता पड़ता है, जब अपना कोई मरे!''

''हाँ.... लेकिन उसका इस रेत से.....?''

''सम्बन्ध है न!'' मंगलू ने कहा, ''अपनी औलाद की मुक्ति के लिए तो सगर ने बेटा, पोता, परपोता सब लगा दिये-गंगा लाओ, गंगा लाओ....। गरीब सिपाहियों का क्या किया? एक के ऊपर एक, ढेर लगाया और फूँक डाले!''

आसपास बैठे लोग हैरत से उसका मुँह ताकते रह गये।

''भगीरथ गंगा को लाये।'' मंगलू ने बताना जारी रखा, ''अपने पूरवजों की राख तो मैया के हवाले कर, डलवा दी समन्दर में। तार दिये सब के सब!! लेकिन गरीब मजदूरों की भस्मी? उसकी तरफ ध्यान गया कभी?''

''मजदूर कहाँ से आ गये बीच में?'' एक अन्य पूछ बैठा।

''सिपाही भी हमारी-तुम्हारी तरह मजदूर ही होते हैं बेटा...। हमारे हाथों में कुदाल-फावड़ा है, उनके हाथों में तीर-तलवार थे।'' वह उत्तेजित आवाज में बोला, ''ये जितने भी हरे-भरे पारक और ऊँची-ऊँची इमारतें हैं न! सब उनकी भस्मी पर ही खड़ी हैं।''

''हाँ, लेकिन..... ये काली रेत, जो रोज-रोज जमीन के ऊपर आ जाती है?'' सुबोध ने पूछा।

''रेत नहीं है, भस्मी है पुरखों की।'' मंगलू ने कहा, ''जमना मैया की रेत में समाकर एक हो गयी है।'' फिर उत्तेजित अंदाज में बोला, ''जिसे मुक्ति नहीं मिलेगी, वजूद दिखाने को ऊपर आयेगा कि नहीं? उसे छितराने में ताकत मत बरबाद करो। आज छितराओगे, कल सुबह फिर.... कल छितराओगे.... अगली सुबह फिर.... । सन् 47 में दिल्ली आया था बबुआय तभी से देख रहा हूँ यह खेल।''

बलराम अग्रवाल, एम–70, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032
मो. : 8826499115, ई–मेल : 2611ableram@gmail.com

✧ ✧ ✧

जीवित मृत

महेश दर्पण

उस शहर के लोग चाहे जो करते, उन्हें लगता कि उसमें उन्हें मजा ही नहीं आ रहा। जिंदगी के साथ तरह-तरह के प्रयोग करते-करते दरअसल, अब वे खुद से भी खासे ऊब चुके थे। आखिरकार, धीरे-धीरे उन्होंने बोरियत दूर करने का एक तरीका सीख ही लिया। वे जब कभी बोर होते, फेसबुक खोल धूनी रमा कर बैठ जाते।

शुरू शुरू में तो वे कुछ देर के लिए ही फोसबुक खोलते, लेकिन फिर काफी देर तक खोले रहने लगे। इस तरह, धीरे-धीरे फिर यह उनकी आदत का एक हिस्सा ही बनता चला गया।

अब वे पूरे इत्मीनान से एक ऐसी दुनिया में खोए रहते जो उन्हें असल दुनिया की मुसीबतों से परिचित कराते हुए भी उनसे दूर करती चली जाती।

वे जब कभी खुश होते तो फेसबुक पर जाहिर करते। जब भी दुखी होते तो उसी पर टांक देते। किसी को प्यार करना होता तो वे फेसबुक पर करते और अगर कभी किसी पर भड़ास निकालनी होती, तो फेसबुक पर ही जो चाहे लिख मारते।

अब वे अलग ही तरह से जीना सीख चुके थे, क्योंकि वे फेसबुक के थे और वह उनका। उन्हें अपनी दुनिया पहले के मुकाबले अब कहीं ज्यादा बड़ी लगने लगी थी। उन्हें लगता, अब कोई भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। धीरे-धीरे उन्हें लगने लगा कि अब वे अमर हो गए हैं। और जब अमर हो ही गए तो फिर डरना कैसा?

लेकिन तभी एक दिन अचानक गजब हो गया। यह दिन उनकी जिंदगी का सबसे खराब और डरावना दिन था। उनका फेसबुक, इंटरनेट फेल्योर की वजह से खुल न सका। बस, यही क्षण था जब उनकी अमरता जाती रही। अब वे खुद को मरा ही हुआ समझ रहे थे, जबकि उनकी सांस बकायदा चलती नजर आ रही थी।

लाइक

उस दिन उसका बर्थ डे था। उसे पूरी उम्मीद थी कि आज शाम उसका 'हबि' ठीक समय पर घर जरूर पहुंच जाएगा। लेकिन वह उम्मीद ही क्या जो टूटे नहीं। हबि कहीं बिजी हो गया और उसने उसे थोड़ा इंतजार करने को कह दिया।

वह बेसब्री से उसके इंतजार में बैठ कर अपने फ्रेंड्स के मैसेज पढ़ने लगी। लेकिन जब इंतजार बर्दाश्तबाहर हो चला तो उसने फेसबुक खोला और उसमें अपनी आमत्महत्या की खबर प्रसारित कर डाली।

देखते-देखते कुछ ही देर में हजारों लाइक आ गए। वह हैरान और खुश एकसाथ थी। इतने 'लाइक' तो कभी उसे जीते जी भी कभी हासिल न हुए थे।

सब्स्टीटयूट

उसका छोटा बेटा अकेले में मोबाइल पर हरदम जाने क्या करता रहता था। वह सोचना शुरू करता और फिर सोचता ही रह जाता। हार कर एक दिन उसने अपनी पत्नी से जानना चाहा- 'क्या तुम जानती हो, ये आजकल किस फेर में पड़ा रहता है ?'

'अरे भई, मैं ये कैसे बता सकती हूँ। जैसे तुम देख रहे हो, मैं भी देख ही तो रही हूँ।' पत्नी ने टका-सा जवाब दे दिया।

उसने बेटे से पूछा- 'ये क्या लगा रहता है भई तू हर वक्त आजकल मोबाइल के साथ ?'

'पापा, आपके पास तो कभी टाइम होता नहीं। मैंने मोबाइल नेट से कनेक्ट कर लिया है। जिन चीजों के बारे में जानना चाहता हूँ, इसी से जान लेता हूँ।'

सॉरी

सड़क पर दो लोग आमने-सामने से आ रहे थे, लेकिन अपने आप में इस कदर मशगूल कि किसी दूसरे के बारे में सोचने की तो जैसे फुर्सत ही न हो। एक अपने मोबाइल पर आया कोई एसएमएस देखने में बिजी था तो दूसरा यह जानने की कोशिश में था कि आखिर अभी-अभी आया मिस कॉल है किसका। वे दोनों इस कदर करीब आ चुके थे कि किसी भी वक्त टकरा सकते थे। ठीक इसी वक्त पास से गुजरते एक बच्चे ने उन्हें देख लिया। उसके मुंह से निकल पड़ा- 'अंकल सामने तो देखिए।'

दोनों ने पास से आती आवाज की तरफ तो देखा, लेकिन सामने देखना वे भूल ही गए और आपस में टकरा कर एक दूसरे को सॉरी कहने लगे। बच्चा उन्हें ऐसा करता देख हंसने लगा।

नींद

कुछ दिनों से वह नोट करता आ रहा था। उसकी नींद जैसे गायब ही हुई जा रही थी। बहुत पहले ऐसा नहीं था। तब वह जी भर कर सोता और खुद से पूरी तरह संतुष्ट रहा करता था।

उसने अकेले में सोचा- 'आखिर ऐसा क्या होगा तब, जो अब नहीं है?'

तभी जाने कहां से आवाज आई- तब बहुत कुछ नहीं था ऐसा, जो आज है तुम्हारे पास। इस सब को समेटने के चक्कर में ही तो तुम अपनी नींद खो बैठे हो। छोड़ सकोगे क्या वह सब?

जवाब उसने तो नहीं दिया, पर उसके भीतर से कोई उसी से पूछ रहा था- सोना इतना जरूरी है क्या?

रोबोट

सब कुछ ठीक-ठाक ही चल रहा था, लेकिन राजधानी में खास तरह का रोबोट आने की खबर ने ही हाई सोसाइटी की नींद हराम कर दी। यह रोबोट दरअसल, किसी भी खोजी पत्रकार की तरह ऐसी स्टोरी लिखने में माहिर था कि दूध का दूध और पानी का पानी हो जाए। एक बड़े अखबार के मैनेजमेंट ने उसे अपने यहां काम पर लगाने के लिए एक विदेशी कंपनी को एडवांस भी दे दिया। आग की तरह फैली इस खबर से सबसे पहले वे लोग घबराकर बचाव के लिए हाथ-पैर मारने लगे जो अब तक पूरे जोशोखरोश से ब्लैक मनी पर रोक लगाने के लिए आंदोलन का नेतृत्व करते आ रहे थे।

उनमें से एक ने मन बदलने के लिए देश की सबसे बड़ी पार्टी के नेता को फोन किया तो जवाब मिला- 'कुछ दिन तक नेता जी को फोन मत करिएगा, वे आजकल अपने बढ़े हुए ब्लड प्रेशर से परेशान हैं।' उसने एक बड़े समाज सुधारक को कॉल लगायी तो जवाब उसके एक शिष्य ने दिया- 'बाबा इन दिनों एक विशेष प्रकार के योग को जनोपयोगी बनाने की दिशा में प्रयोग कर रहे हैं, आप फिलहाल कोई आर्थिक सहयोग कृपया न करिएगा।' उसने एक बड़ी फर्म के मालिक और अपने एक करीबी दोस्त को फोन किया जो अक्सर उसके यहां आकर खूब तरल-गरल का सेवन करता रहता था। उसने कॉल रिसीव तो कर ली, लेकिन उसे समझाया-'देखो डियर, तुम्हारा तो कुछ नहीं, लेकिन अपन की तो इज्जत है न। अब प्लीज, जब तक मैं तुम्हें कॉल कर के रूट क्लियर का संकेत न करूं, तब तक तुम मुझे कॉल मत करना। जानते हो, वो रोबोट तो सुनते हैं, पाताल से भी खबर निकाल लाता है।'

हार कर उसने उस अखबार के मालिक को ही कॉल लगा दिया- 'जी, बड़ी खुशखबरी मिली कि आपने वो नायाब रोबोट हायर कर लिया है। चलो अच्छा हुआ, अब कोई चीज किसी से छिपी नहीं रहेगी।' अभी वह कुछ और कहना चाह ही रहा था कि उसे अखबार के मालिक की घबराई हुई सी आवाज सुनाई दी-'आप जिसे खुशखबरी का सबब बता रहे हैं, वह तो हम सबके गले की हड्डी ही बनने पर उतारू है। जब तक हम उसकी प्रोग्रामिंग ठीक न कर लेंगे तब तक उससे काम न ले सकेंगे।'

असल खुशखबरी पाकर, उसी शाम उसने शहर के तमाम बड़े लोगों के लिए एक सरप्राइज पार्टी अरेंज कर डाली। जो लोग उसके बुलाने पर घबराते हुए भी पार्टी में आ गए, वे यह देख कर हैरान थे कि वहां खाने-पीने को कुछ भी मौजूद न था। घुटती सांस में जब उनके सब्र का बांध टूटने लगा तो उन्होंने मेजबान से पूछ ही लिया-'ये कैसी पार्टी अरेंज की है आपने? न कुछ खाने को नजर आ रहा है और न पीने को।' उसने उन सबको खुशखबरी देते हुए कहा-'खाना-पीना तो कहीं भी और कभी भी हो जाएगा जी, आप सबको एक बड़ी खबर देनी है। जब तक उस रोबोट की प्रोग्रामिंग ठीक कराई जा रही है, तब तक फिलहाल हम सब खुल कर सांस ले सकते हैं।'

उसका यह कहना था कि पार्टी में आए लोगों की सांस सचमुच लौट आई और वे खुशी-खुशी पार्टी हॉल से निकल कर गार्डन एरिया में आ गए।

हमशक्ल

वह बड़ा हैरान था कि कैसे तमाम लोगों के बीच से निकलकर एक बड़ी कंपनी का सीईओ उसे किसी वीवीआईपी की तरह ट्रीट कर रहा है। फिर बहुत कम समय में उसने उससे अपने कुछ काम करवा देने का सांकेतिक आग्रह भी कर डाला। मजबूरी में उसकी समझ में न आने वाली बातों का उसने मुस्कराकर ही जवाब दे दिया। हैरानी की बात तो यह थी कि वह शख्स उसकी मुस्कराहट पर भी लट्टू हुआ जा रहा था। उसके साथ उसकी इस बातचीत को शायद कुछ और प्रभावशाली लोगों ने भी देख लिया था। अब वे दूर से ही उसे देख कर मुस्कराने की कोशिश कर रहे थे। उसने सोचा, कहीं आज उसकी शक्ल किसी बड़े आदमी से मेल तो नहीं खा रही। इसी खयाल के साथ फिर वह बड़े लोगों के बीच से गुजरता हुआ किसी तरह सीधा वॉश रूम जा पहुंचा और शीशा देखने लगा। उसकी हैरानी तब और बढ़ गई जब उसने साफ-साफ देखा कि वह तो बिलकुल अपने जैसा ही लग रहा था। वह शायद गफलत में कुछ और सोचता, लेकिन वॉश रूम से बाहर आते ही उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। वही सीईओ अब जिस शख्स के साथ खड़ा बातें कर रहा था, उसकी शक्ल हू-ब-हू उसे अपनी जैसी ही लग रही थी। दिल्ली शहर के एक जाने-माने और विचारों से प्रगतिशील लेखक सिद्धनाथ एक दिन अपने ही मुहल्ले की एक गली से होकर गुजर रहे थे। घर पहुंचने की जल्दी में थे, लिहाजा उनकी चाल में कुछ तेजी आनी स्वाभाविक थी। गली में उन्हें दो-एक परिचित मिले भी, लेकिन उन्होंने समय बचाने के लिए हाय-हलो और नमस्कार से ही काम चला लिया। लेकिन यह क्या, अचानक उनकी चाल खुद-ब-खुद धीमी पड़ने लगी। दरअसल, उनकी नजर गली के एक मकान की बाउंड्री पर बैठी एक बिल्ली पर पड़ गई थी।

बिल्ली कुछ इस अदा में बैठी थी जैसे अभी उछल कर गली के दूसरी ओर निकल जाएगी। सिद्धनाथ को लगा, हो न हो आज तो यह बिल्ली अपना रास्ता काट ही जाएगी। उन्होंने पहले शू-शू कर उसे दूसरी ओर भगाना चाहा, लेकिन वह बड़ी ढीठ निकली। जहां बैठी थी, वहीं बैठी रही। सिद्धनाथ अभी असमंजस में ही थे कि सामने से एक लड़का ठीक बिल्ली के सामने से होकर चला आया। उसके पीछे-पीछे एक सांड अपनी मस्त चाल में चला आ रहा था। जाने क्यों सिद्धनाथ को लगा कि बिल्ली सांड के भय से शायद आगे न बढ़े। यही सही वक्त है जब वह गली पार कर सकते हैं। अचानक उन्होंने अपनी चाल में तेजी भरी और फिर एक सांस में गली पार कर गए।

जीनियस का निधन

एक दिन एक जीनियस को लगा कि छोटा शहर उनके जैसी प्रतिभा के काबिल नहीं है। वह तुरत महानगर में आकर बस गया। अपनी एक नई दुनिया बसाने की गर्ज से वह अपने साथ के लिए किसी ऐसी सुकन्या की तलाश में लग गया जो उसके इंटलक्ट को समझ सकती हो। उसकी यह चाहत भी जल्द ही पूरी हो गई क्योंकि उस जैसे समृद्ध और जीनियस को आखिरकार एक आधुनिका मिल ही गई।

दिक्कत सिर्फ ये थी कि उम्र का अंतर खासा था और जब कभी वे साथ नजर आते, देखने वाले भ्रम में पड़ ही जाते। लेकिन इससे क्या, वे दोनों तो एक-दूसरे के दिल में इतनी जगह बना ही चुके थे कि छोटी-छोटी बातों के लिए समाज की कतई परवाह न करते।

जीनियस की ख्याति तो थी ही, लिहाजा एक ऐसी मित्र मंडली बनते भी देर न लगी जो अक्सर उसके यहां अपनी शामें गुजारने लगी। यह देखकर जीनियस खुश थे कि एक तो वे अब अकेले नहीं हैं और दूसरे उनके इंटलेक्ट की कद्र करने वाले भी खूब मिल गए हैं।

जीनियस की साथी बनी सुकन्या अक्सर उन्हें सच्चे दोस्तों की पहचान कर लेने का आग्रह करती, लेकिन वे थे कि अपने फक्कड़पन में ही मस्त रहते। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था, लेकिन एक दिन अचानक जीनियस ने आखिरी सांस ले ली। अकेली रह गई उनकी जीवन साथी ने घबराकर उनके हमप्याला हमनिवाला दोस्तों को कॉल करना शुरू कर दिया। उसे पूरा यकीन था कि वे सब जल्द ही आ पहुंचेंगे, लेकिन मुसीबत की इस घड़ी में उन लोगों को जरूरी यह लगा कि पहले वे फेसबुक पर अपने इस जीनियस मित्र के निधन और उसके साथ अपने करीबी रिश्तों की चर्चा कर लें। लिहाजा, जिस वक्त जीनियस की संगिनी को उसके मित्रों की सबसे ज्यादा जरूरत थी, उसी वक्त वह सबसे अकेली रह गई थी।

महेश दर्पण, सी–3/51, सादतपुर, दल्ली–110090
मोबाइल–9013266057

गाली

रामयतन यादव

एक दिन एक बूढ़े कुत्ते के मन में यह विचार पैदा हुआ कि काशी चलकर गंगा स्नान किया जाये। फिर क्या था, वह काशी की दिशा में चल पड़ा। काशी वहाँ से काफी दूर थी और वह अभी सात-आठ कोस ही चल पाया था कि शाम हो गई और चारों तरफ अंधेरा फैल गया। अंधेरे का सहारा लेकर वह धीरे-धीरे एक गाँव में प्रवेश करने लगा।

मगर यह क्या..... सिर मुंडाते ही ओले पड़े। अभी गाँव की गली में वह पूरी तरह प्रविष्ट भी नहीं हुआ था कि उस गाँव के कुछ कुत्तों ने भौकते हुए उसे धर दबोचा। किसी ने अपने दाँतों से बूढ़े की पूँछ को तो किसी ने उसकी टांगो को खींचना शुरू कर दिया। बूढ़ा कुत्ता नि:सहाय होकर हॉफने लगा। हॉफते हुए ही उसने कहना शुरू किया-अरे मूर्खो! अपनी बिरादरी की प्रगति से ईर्ष्या करने की आदत तो आदमी में होती है, हम कुत्तों को इस आदत से बचना चाहिए। वरना अपने पूर्वजों की तरह तुम सब भी कुएँ के मेढ़क बनकर रह जाओगे। कभी भी काशी की यात्रा नहीं कर पाओगे।'

मगर उस बूढ़े कुत्ते की बात का नौजावान कुत्तों पर कोई असर नहीं हुआ। उनमें से एक ने जोर से बूढ़े के कान को काट खाया। बूढ़ा मारे दर्द के जोर से चीखा। फिर अनायास ही उसके मुँह से एक गाली निकली,- 'आदमी कहीं का.....।

रक्षक

गाँव में चोरों का आतंक चरम तक पहुँच चुका था। लोग काफी परेशान थे। स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि सुबह जब लोगों की आँखें खुलती तो ये उत्सुक होकर एक-दूसरे से यही जानने की कोशिश करते कि आज किसके घर से कौन-सी चीज चोरी हुई। इस स्थिति से परेशान होकर एक दिन उस गाँव के सभी नर-नारी और बच्चे ग्राम प्रधान के नेतृत्व में गाँव के बाहर स्थित मंदिर में जमा हुए और एक स्वर से चोरों से रक्षा हेतु प्रार्थना की-हे प्रभु, हमारी रक्षा कीजिए।'

उस रात गाँव में किसी के यहाँ चोरी नहीं हुई। सभी प्रसन्न हुए। सुबह भगवान के प्रति आभार व्यक्त करने हेतु जब गाँव के लोग मन्दिर में इकट्ठे हुए तो अवाक् रह गए-कीमती पत्थर से निर्मित भगवान की मूर्ति गायब थी। गाँव की सुरक्षा का आखिरी कवच भी टूट चुका था। वे सब कई दिनों तक किर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में रहे.....फिर एक दिन स्वयं ही अपनी रक्षा की बात सोचने लगे।

रामयतन यादव, मकसूदपुर, पोस्ट : फतुहा, जिला : पटना (बिहार) पिन – 803201
मो. : 07261039053, 09234798952, ई मेल : ramyatanyadav80@gmail.com

✧ ✧ ✧

टूटता परिवार: बिखरता मन

नृपेन्द्रनाथ गुप्त

पुत्र-पौत्र के मोह में श्री विद्यानिवास जी अपने पुत्र के साथ लंदन चले गये। वहाँ उनकी इच्छा थी कि वे पौत्रों के साथ उनके कमरे में ही रहें, ताकि अधिकाधिक उनका साहित्य और प्यार उन्हें प्राप्त हो सके, किन्तु आधुनिक सभ्यतावाली बहू ने उनके लिए अलग कमरे की व्यवस्था कर दी। धीरे-धीरे दिन व्यतीत होते गये। वे अपना अधिकांश समय पोतों के साथ व्यतीत करने लगे। लंदन की ठंढ उनकी वृद्धावस्था नहीं झेल पायी। उन्हें ठंढ लग गयी और खांसी का वेग बढ़ गया। पुत्रवधू श्वसुर की खाँसी बर्दास्त नहीं कर पायी। उसे श्वसुर के साथ पौतों का घुलना-मिलना पसंद नहीं था।

सेवा - निवृत आई. ए. एस. पदाधिकारी श्री विद्या निवास जी मेरे घनिष्ठ मित्रों में से एक हैं। उनसे देश की ज्वलंत समस्याओं पर खुलकर चर्चा होती रहती है। इधर काफी समय से उनसे मेरी भेंट नहीं हो पायी थी। उनकी याद तो आती है, किन्तु उनकी कुछ व्यक्तिगत समस्या होगी, सोचकर चुप बैठ जाता हूँ।

अचानक एक दिन दीर्घ अन्तराल के बाद वे मेरे निवास स्थान पर आये। वे अत्यंत खिन्न दीख रहे थे। गर्मी का दिन था। पैदल आने के कारण वे पसीने से तर-बतर और दुखित मुद्रा में मेरे निवास पर आकर धम्म से कुर्सी पर बैठ गये। फिर लन्दन में बिताए दिनों की जो पीड़ा और टीस भरी व्यथा सुनायी, मेरा भी मन खट्टा हो गया। उनकी पत्नी का कुछ दिन पहले देहांत हो चुका था। उनका एकमात्र पुत्र विलायत में था। पुत्र के निवास लंदन से दो दिन पूर्व लौटे थे। घर में उनके अतिरिक्त कोई नहीं था। उनकी एकमात्र पुत्री की भी शादी हो चुकी की और सौभाग्यवश वह पटना में ही एक पॉश कॉलोनी में पति के साथ भव्य मकान में रहती थी। वहीं से वह पिताजी के भोजनादि की व्यवस्था कर देती थी।

दो महीने पूर्व उनका पुत्र किसी कार्य के सिलसिले में दिल्ली आया था। वहाँ से पटना भी आया। उसे पिता का एकाकी जीवन देखकर हार्दिक वेदना हुई और पिता-पुत्र के सहज बंधन के मोहवश उसने पिता से आग्रह किया कि वे भी उसके साथ कुछ दिनों के लिए

विलायत चलें। जब तक वहाँ रहने की तबीयत होगी तबतक वहाँ रहेंगे और पटना लौटने का जब भी मन होगा तो वह लौटने की वैसी ही व्यवस्था कर देगा।

पुत्र-पौत्र के मोह में श्री विद्यानिवास जी अपने पुत्र के साथ लंदन चले गये। वहाँ उनकी इच्छा थी कि वे पौत्रों के साथ उनके कमरे में ही रहें, ताकि अधिकाधिक उनका साहित्य और प्यार उन्हें प्राप्त हो सके, किन्तु आधुनिक सभ्यतावाली बहू ने उनके लिए अलग कमरे की व्यवस्था कर दी। धीरे-धीरे दिन व्यतीत होते गये। वे अपना अधिकांश समय पोतों के साथ व्यतीत करने लगे। लंदन की ठंढ उनकी वृद्धावस्था नहीं झेल पायी। उन्हें ठंढ लग गयी और खांसी का वेग बढ़ गया। पुत्रवधू श्वसुर की खाँसी बर्दास्त नहीं कर पायी। उसे श्वसुर के साथ पोतों का घुलना-मिलना पसंद नहीं था। फिर उसकी भोजनादि की व्यवस्था की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी बढ़ गई थी। वह उनसे छुटकारा पाने के लिये व्यग्र हो गई। और जब शाम को पति ने उसे उदास देखकर कारण पूछा तो वह उबल पड़ी। 'दिन-रात आपके पिता की जरूरतें पूरी करते-करते मैं तंग आ गई हूँ, पता नहीं और कितने दिनों तक मेरी यह जिल्लत भरी जिन्दगी बनी रहेगी। क्यों नहीं पिताजी (श्वसुर) को जल्दी से जल्दी भारत वापस भेजने की व्यवस्था कर दें ताकि उनसे छुटकारा मिल जाए, ताकि मैं भी चैन की साँस ले सकूँ। 'दीवार के उस पार से श्री विद्यानिवास जी ने यह कानाफुसी सुन ली थी। उन्होंने तत्काल निश्चय कर लिया कि मुझे अब इस घर में एक दिन भी नहीं रहना है। मैं कल ही बेटे से पटना लौटने की व्यवस्था करने के लिये कहूँगा। सुबह होते ही उन्होंने पुत्र को बुलाया और उन्होंने अपनी इच्छा बतायी। पुत्र को पिता के तत्काल निर्णय पर आश्चर्य हुआ। वह चाहता था कि वे कुछ महीने और उनके साथ रहें, किन्तु श्री विद्यानिवास जी ने कहा कि 'नहीं बेटा! तुम्हारी स्वर्गीय माँ की याद आ रही है। पटना का घर भी सूना होगा। अत: मैं जल्दी वापस लौटना चाहता हूँ। स्वप्न में भी उनकी आत्मा बार-बार पटना घर लौटने के लिए कह रही है।''

श्री निवास जी का पुत्र-पौत्र से व्यामोह टूट-सा गया था। उनका हृदय मर्माहत था। भारत लौटकर उन्होंने अपनी जमीन-जायदाद सबकुछ वृद्धाश्रम को दान कर दिया जो उनका स्व अर्जित था। कुछ रूपये आवश्यक खर्च के लिए उन्होंने बैंक में जमा कर दिए। स्वयं अपने रहने की व्यवस्था अपने पेंशन के पैसे से करने का निर्णय लिया।

लन्दन से लौटकर उन्होंने मुझसे आहत मन से अपनी राम कहानी सुनायी तो मै भी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सोचने लगा कि समाज कितना संवेदनहीन हो गया है। पुत्र-पुत्रवधू के लिये जन्मदाता/पालक ही बोझ बन जाते हैं। बच्चे यह क्यों भूल जाते हैं कि एक दिन वे भी वृद्ध होंगे।

नृपेन्द्रनाथ गुप्त, श्री उदित आयतन, ब्रह्म स्थान,
शेखपुरा, पटना–800 014

✧ ✧ ✧

बड़ा रावण

डॉ. लता अग्रवाल

''तू बैठ यहाँ... ले ठंडा पानी पी तब तक मैं तेरे लिए सैंडविच और चाय बनाकर लाती हूँ।'' अनमनी सी लवली सोफे पर पसारा मार कर बैठ गई। किचिन में सैंडविच बनाते हुए विनीता सोच रही थी क्या होगा इसका इतनी पढ़ी लिखी है, सुंदर, सहृदय और कमेरी भी, मगर उसका क्रोध उसके सभी गुणों पर राहू बनकर बैठा है। ''ले पहले सैंडविच खा... मुझे पता है तूने रात को कुछ नहीं खाया होगा।''

''का हो रावण भैय्या,.... आज तो दशहरा है; तोहार जलने का दिन, येई काजे तैयार होके खड़े हो ... हें...।'' दशहरे के दिन सज संवर कर तैयार खड़े रावण को देखकर हवा में लहराती पोलीथीन ने इठलाते हुए कहा।

''मुझे अच्छी तरह पता है बहन पोलीथीन कि आज दशहरा है और शाम मेरा अग्निदाह होना है। इसमें हंसने की क्या बात है?'' ''ना जी ना, हम हंस ना रहे बता रहे ... बुरे काम का बुरा नतीजा होवे हैं।'' पोलीथीन ने पुनः चुटकी ली।

''इतने वर्षों से हर साल अग्नि की भेंट चढ़ते हुए इतना तो मैं जान गया हूँ कि बुरे काम का अंत बुरा ही होता है मगर लगता है तुमने मुझसे कोई सबक नहीं सीखा!'' रावण ने गम्भीर होते हुए कहा।

''क्या मतलब''

''मतलब ये कि मैंने सिर्फ माता सीता का अपहरण किया था इसलिए आज तक परिणाम भोग रहा हूँ, तुमने तो जाने कितने जीवों की जान ले ली, नदियों के प्रवाह को रोक दिया... इतना ही नहीं धरती माता को भी बंजर करने में कोई कसर नहीं रखी। मैं तो हर वर्ष याद भी किया जाता हूँ क्योंकि एक बुराई के अलावा मुझमें कई अच्छाइयाँ भी हैं।''

''ऐ.....''

''हाँ! सोचो! सोचो तुमने अपने कितने

दुश्मन खड़े कर लिए हैं, अब सबने मिलकर तुम्हारे अस्तित्व को मिटाने का प्रण कर लिया है। शीघ्र ही तुम अतीत की वस्तु बनकर रह जाओगी। क्योंकि तुम मुझसे बड़ी रावण हो।

पोलीथिन अपने ही अपराध बोध में सिमटी खड़ी थी।

गुड गोबर

''अरे ! लवली तू ...अचानक, सुबह - सुबह !'' बेटी लवली को अचानक दरवाजे पर देख विनीता ने चौंकते हुए पूछा।

''ये लो ....अब क्या मुझे यहाँ आने के लिए भी इजाजत लेनी होगी।'' लवली ने तैश में आकर जवाब दिया तो विनीता समझ गई आज फिर उनकी बेटी ससुराल में किसी से उलझकर आई है।

''तू बैठ यहाँ... ले ठंडा पानी पी तब तक मैं तेरे लिए सैंडविच और चाय बनाकर लाती हूँ।'' अनमनी सी लवली सोफे पर पसारा मार कर बैठ गई। किचिन में सैंडविच बनाते हुए विनीता सोच रही थी क्या होगा इसका इतनी पढ़ी लिखी है, सुंदर, सहृदय और कमेरी भी, मगर उसका क्रोध उसके सभी गुणों पर राहू बनकर बैठा है। ''ले पहले सैंडविच खा... मुझे पता है तूने रात को कुछ नहीं खाया होगा।''

''माँ ! एक तुम ही हो जो मुझे समझती हो वरना... ''लवली मुँह फुलाये सैंडविच उठाते हुए बोली।''

''सच कहा तूने लवली मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूँ। पहले पेट की आग को शांत कर फिर जरा ठंडे दिमाग से बता किसके नाम पर इतना तुनक रही है?''

''और कौन ...वही...प्रीतम की मम्मी जी...।''

''श ..ऐसे नहीं कहते बेटी, वो केवल प्रीतम की ही नहीं तेरी भी मम्मी जी हैं।''

''माई फुट! कितना करती हूँ उनके लिए समय से दवाई ...दूध...खाना... मगर उन्हें वह कुछ भी दिखाई नहीं देता।''

''कैसे दिखाई देगा बच्चे, तेरे गुस्से की ज्वाला में तेरी सारी सेवा जलकर भस्म जो हो जाती है।''

''मतलब!''

''तू गुस्सा छोड़ दे तो देख तेरी सारी अच्छाइयां आईने की तरह साफ चमकने लगेंगी।''

''तो क्या माँ आप भी मुझे ही दोषी कह रही हैं?''

''दोष नहीं दे रही बेटी, मैं तो बता रही हूँ कि तुझमें कई अच्छाइयां है मगर जो बात -बात पर

अपना आपा खो देती है न ....उससे सारे किये कराये पर पानी फिर जाता है। अच्छा तू तो बचपन में बहुत ध्यान से महाभारत देखती थी न! दुर्योधन को देखा बलशाली था..., योग्य उत्तराधिकारी भी था..., प्रजा का भी ध्यान रखता था । मगर...उसके क्रोधी स्वभाव ने उसे इतिहास का सबसे बड़ा खलनायक बना दिया।''

''माँ गुस्सा नहीं आएगा जब प्रीतम ...भी मुझे ही गलत कहेंगे। कम से कम उन्हें तो मुझे समझना चाहिए न?''

''वो बेचारा, भला कैसे समझेगा जब तू हमेशा क्रोध की भाषा बोलेगी।''

''क्यों नहीं समझेगा माँ! आखिर पढ़ा लिखा ...एक्ज्यूकेटिव है?''

''सो तो है बेटी मगर क्रोध की लिपि बड़ी अस्पष्ट है ममता के अतिरिक्त किसी और से पढ़ी नहीं जाती आसानी से।''

स्वाभिमान

वह अपने साथियों में अकेली वीरांगना थी, जो सीमा से सटे गांवों में समाज कल्याण के कार्य हेतु जाती, बच्चों को शिक्षा, स्त्रियों को जागृत करना एवं वृध्दों की सेवा में उसे असीम आनन्द की अनुभूति होती। आज टीम जब अपने काम में रत थी अचानक दुश्मनों ने गोलियां दागना शुरू कर दिया।

जैसे-जैसे दुश्मन करीब आ रहे थे उसके साथियों की चिंता बढ़ रही थी, ...अंतत: कोई और चारा न देख उन्होंने लड़की को गोली मार दी। ''यह क्या किया भाइयों तुमने ...! मैं तो तुम्हारी साथी थी, हर समय तुम्हारे कंधे से कंधा मिलाकर देश की खातिर ....''

''सच कहा बहन, तूने सदा हमारे कंधे से कंधा मिला हर खतरे को अपने सीने पर झेला है। तू तो अभिमान है हमारा। मगर अब जब दुश्मनों से बचने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा, ऐसे में तुझे दुश्मन के हवाले कैसे छोड़ देते....!''

डॉ. लता अग्रवाल, वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद्
निवास – 73 यश बिला भवानी धाम, फेस–1, नरेला शन्करी, भोपाल–462041
मो. : 9926481878

✧ ✧ ✧

रक्षक

प्रो. कलानाथ मिश्र

आज सुजाता के ऑफिस पहुँचते ही सब ने उसे घेर लिया। सबके चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा का भाव था। सबने आपस में कानाफूसी शुरू कर दी। आशा से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया- अरे सुजाता! तू तो छुपीरुस्तम निकली?

सुजाता ने जानकर भी अंजान बनते हुए कहा-क्यों, क्या हुआ?

आशा चिढ़ गयी। मुँह बनाते हुए कहा- 'अब ज्यादा बन मत। ये हाथ में चूड़ी..., माथे पर बिंदी..., तुमने बताया भी नहीं और शादी कर ली?

सुजाता का चेहरा मलिन पर गया। उसने भावुकता के साथ कहा-'क्या बात करती हो? कई बार कह चुकी हूँ कि उनके बाद वह स्थान मैं किसी को नहीं दे सकती।'

वंदना ने नम्रता के साथ कहा- 'वही तो सुजाता दी! आप तो जीजा जी के जाने के बाद कभी बिंदी नहीं लगाई? न कभी आपकी कलाईयों पर चूड़ियाँ ही देखी हम सबने। फिर आज अपके माथे पर ये लाल बिंदी, ये हाथों में चूड़ियाँ, ये लाल लिपिस्टिक भी तो है?

वंदना की आँखों में सहज प्रश्न का भाव था। उसने फिर कहा- 'यह सब देखकर सबको तो लगेगा ही ना कि..... वह पूरा वाक्य नहीं बोल सकी। उसकी बात काटकर आशा ने खीझ के साथ कहा- सुजाता अब ज्यादा बनने की कोशिश मत कर। शादी नहीं की तो.... क्या मन ही मन किसी को अपना मान ली?

सुजाता चिढ़ कर बोली- 'कहा न ऐसी कोई बात नहीं। मैं फिर कहती हूँ 'उनका स्थान किसी को नहीं दे सकती। वे मेरे दिलोदिमाग में छाए हैं। लगता है वे हमेश मेरे साथ हैं'।

फिर यह लाल बिंदी ये चूड़ियाँ, ये लिपिस्टिक... अचानक इस बदलाव का राज क्या है?

सुजाता ने एक लंबी सांस लेते हुए कहा- ''जानती हो, मैं जब भी घर से निकलती थी। ऑफिस आते जाते, लौटते हुए, बस पड़ाव पर खड़ी होती, शॉपिंग करने जाती या सब्जी लेने जाती थी, कहीं भी रहती एक अजीब तरह से लोग मुझे घूरते रहते थे। फिर शरारती लहजे में बोली- शायद उन्हें लगता हो कि कोई 'वैकेंसी' है। उनकी आँखों में जैसे एक सांकेतिक अश्लील आमंत्रण का भाव रहा करता है। साल-डेढ़ साल से परेशान हो गयी थी मैं। हमेशा लगता था किसी की आँखें हमारा पीछा कर रही हों। कोई रास्ता नहीं मिल रहा था पीछा छुराने का। बहुत सोची, क्या करूँ? क्या ना करूँ?

बस मैंने यह कवच धारण कर लिया। क्या करती? अब जिसे जो सोचना हो सोचे। पर मेरे लिए ये चूरी, या बिंदी नहीं हैं? ये मेरे रक्षक हैं।

राह

भींगे मटमैले, गंदे चौकी के एक कोने में लछमिनिया माथे पर हाथ रख कर शोकाकुल बैठी थी और बार-बार कपार पीट रही थी। सब लाहेब हो गया....। सब लुट गया...।

सुरेश ने व्याकुलता से टोका, क्यों कपार पीट रही हो?

कपार न पीटूँ तो क्या करूँ? यह सब कुछ पाने के लिए रात दिन एक कर दिया था हम दोनों ने। बस ईत्ती सा सपना देखे थे हम। उसे पूरा करने में दस बरस लग गये। तुम्हें नौकरी करने परदेस रहना पड़ा। घर परिवार से दूर रहे। शरीर गलाकर काम करते रहे।

सुरेश ने दार्शनिक होते हुए भर्राए आवाज में कहा- तो क्या करेगी? अब माथा पीटने से सब वापस आ जाएगा क्या?

लछमी बिना सुने रुंधो गले से बोलती रही- हम हियाँ रात-दिन लोगों के घरों में बर्तन बासन, झाड़ू-पोछा करते रहे। हड्डी गलाकर काम करते रहे। बस यही साध कि सपना सच हो। हुआ भी। सब मिला, यह अपना झोपड़ा जो हमारे लिए किसी महल से कम नहीं। टी.वी., फ्रीज, बर्तन बासन। लेकिन आज एक रात में सब स्वाहा हो गया।

सुरेश ने कहा- मत रो लछमी, भगवान ने पानी बरसाकर बाढ़ ला दिया तो इसमें किसी का क्या दोष। अपने भाग्य को कोसो लछमी। इसके अलावा हम क्या कर सकते हैं?

लछमी जैसे तरप उठी- भाग्य, भाग्य का रट लगाकर ही हीयाँ तक पहुँच गए हमलोग। देखो यह पानी में तैरता टी.वी, डूबा हुआ फ्रीज, यह अपना मोटरसाइकिल देखो..। कपार न पीटें तो क्या करें? अब कहाँ से फिर जुटा पाएंगे?

लछमी फिर बुदबुदाकर कहने लगी- नहीं भाग्य को नहीं कोसेंगे, भाग्य ने तो सब कुछ दिया। दोष भाग्य का नहीं, व्यवस्था का है। दोष पानी का राह रोककर घर बनाने वाले का है, दोष उस सब्जीवाले का भी है जिसने पानी के रास्ते में पॉलिथीन ठूस दिया। दोष ऊ वीआईपीअन सबका है, जो प्लास्टिक में बोतलबंद पानी पीकर पानी की राह बंद करता है। दोष ठेकेदार और सरकार का है जो पानी का रास्ता बनाता नहीं और पेट भर पैसा का बंदरबांट करता है। किस किसको दोष दें? पर हम तो डूब गए न?

लछमी विकल नेत्रों से सुरेश को देखते हुए बोली- भगवान तो पानी देता ही है न? न बरसे तो हाहाकार मच जाए। पर पानी धरती पर आकर पानी से मिलने को आतुर रहता है। हमारा काम है कि पानी को पानी से मिलने का राह दें। उसे रोकें नहीं। उसके राह को रोकेंगे तो वह तिलमिलाकर सब डुबो ही देगा। देखो न सब डूब गया।

डॉ कलानाथ मिश्र, एमए, एमबीए, पी–एच.डी., विश्वविद्यालय प्राचार्य, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
ए.एन. कॉलेज, पाटना, मो. : 9835063713, ई–मेल : kalanath@gmail.com

✧ ✧ ✧

आँसू

निरूपमा राय

वह अब बूढ़ा हो चला है, फिर भी बच्चों के स्नेह और सम्मान की खाद उसमें जीने की उत्कट इच्छा भरती रही है। वह भी तो आशीष लुटाता रहा है।

अपना सर्वस्व दान करता रहा है। स्नेह जल सिंचन के एवज में फल देकर निहाल करता रहा है। पर आज उसकी जिजीविषा पर ग्रहण लग गया है। अभी कुछ देर पहले ही तो वह घटना घटी है, सर्वस्व काँप उठा था उसका.... कंपन आत्मा में वेदना की तीक्ष्ण सूईयाँ चुभा रहा था..... उसमें भी तो चेतना है। जरा रूको.....ठहरो.....सारी कायनात चीख पड़ी थी.....हवा रूक गई थी....धूप ठिठक गई थी.....। सर्वत्र मौन का साम्राज्य था.....गूँज रही थी केवल एक मर्मांतक चीख....वो मात्र दस वर्ष का मासूम बालक था। वेदना से विकल लहूलूहान होकर पड़ा था, इसी बूढ़े आम के पेड़ के नीचे....

उसका लहू चीख कर कह रहा था मृत होती जा रही मानवीय संवेदना की कहानी.... उसका दोष केवल इतना था कि वह अपनी बालसुलभ लालसा पर काबू नहीं रख पाया था....आम के टिकोलो से लदा पेड़ उसे अपनी ओर खींच रहा था। तभी एक टिकोला टप से नीचे गिरा, बच्चे ने दौड़कर टिकोला उठा लिया। तभी बगीचे के मालिक की दृष्टि टिकोला खाते बच्चे पर पड़ी। उसका खून खौल उठा। उसने आव देखा ना ताव पास ही पड़ी लाठी उठा कर पिल पड़ा बच्चे पर .. साले चोर की औलाद, आम चुरता है? मार मार कर बच्चे को अधमरा बना डाला। शोर सुनकर बच्चे की माँ भागी आई, लाख मनुहार किया, हाथ जोड़े, पाँव पकडा....पर शैतान की लाठी थमी नहीं।

इधर बच्चे के प्राण निकले उधर प्रकृति बावली हो गई। तेज आंधी चलने लगी मानो सारे वृक्ष जड़ समेत उखड़ जाऐंगे। तेज वर्षा के साथ ओले पड़ने लगे, ऐसा लगने लगा मानों प्रलय की दस्तक हो। जब तूफान थमा तो मृतप्राय बूढे वृक्ष ने देखा, बच्चे की लाश गोद में लिए अभागी माँ बेहोश पड़ी है..... और चारों तरफ, बच्चे के शरीर पर भी टिकोले ही टिकोले हैं, सारा बाग टिकोलों से अटा पड़ा है। वृक्ष पर कहीं फल नहीं.....जब मनुष्य की संवेदनाएं मरने लगतीं हैं, तो प्रकृति का रूदन ऐसे ही फूटता है।

''यह फल नहीं हमारे आंसू हैं...'' जड़ से उखडते, धाराशायी होते वृक्ष की आत्मा में कुछ शब्द गूंजे..... और वह भूमि पर ढह गया।

निरूपमा रॉय, द्वारा – शम्भुनाथ झा, उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,
पूर्णियाँ–854301, बिहार, मो. : 8002747533

✧ ✧ ✧

बुढ़ा किस काम का?

सारिका कालरा

एक वृद्ध जोड़ा नियत समय पर पार्क में आता था, न एक मिनट आगे न एक मिनट पीछे। दूर से ही वे लोगों को दिख जाते धीरे-धीरे कुछ बतियाते हुए वे एक बेंच पर बैठ जाते। कभी पार्क में चहलकदमी करते कभी छोटे बच्चों को पुचकारते। लोग उनको आता हुआ देखकर समय का अनुमान लगा सकते थे। एक दिन वह जोड़ा नहीं आया- एक, दो , चार, पाँच दिन बीत गए। लोगों की निगाहें उस जोड़े को ढूंढती। छठे दिन सिर्फ बुजुर्ग पार्क में आए, नियत समय पर धीरे-धीरे चलते हुए वे उसी बैंच पर जाकर बैठे जिस पर दोनों हमेशा बैठा करते थे। एक महिला ने उन्हें अकेला देखकर पूछा- 'आप इतने दिन नहीं आए। सब ठीक तो है न? और अकेले.....?

वे बोले- 'बेटा आया था कनाडा से, अपनी माँ को ले गया है।'

'अच्छा- ये तो अच्छी बात है। आप भी चले जाते उनके साथ, इस बहाने घूमना भी हो जाता'। वे मायूस-सी हंसी हँसकर बोले- 'मैं बूढ़ा उनके किस काम का। अगले महीने बहू की डिलीवरी होने वाली है इसलिए अपनी माँ को ही ले गया है। मेरे जाने से उनका काम भी बढ़ेगा और खर्च अलग से'

महिला इस जवाब पर आगे पूछने की हिम्मत न कर सकी। उसने भी तो अपने छोटे बेटे के होने पर सिर्फ अपनी सास को ही गाँव से बुलाया था। अपने पति के यह कहने पर कि- 'पिताजी को भी बुला लेते हैं, वे भी बच्चों को देख लेंगे। गाँव में अकेले क्या करेंगे।' तब उसने भी अपने मन में सोचा था- 'बूढ़ा किस काम का। घर का खर्च भी बढ़ेगा और काम अलग से।'

2. बरसता पानी

रात को पानी बहुत बरसा था और सुबह से ममता की आँखें बरस रही थीं। अपनी भरी आँखों को वह पापा की नजरों से बचाती रही थी। कहीं पापा ने उसको रोते देख लिया तो वे भी कमजोर पड़ जाएंगे। बेटी के होने के बाद वह पहली बार घर आई थी। घर में अकेले पापा को देखकर उसके मन में हूक-सी उठी थी। माँ होती तो पापा दिन भर कुर्सी पर बैठे-बैठे- 'सुनती हो। सुनती हो।' कहते रहते और माँ पापा की आवाज पर पूरे घर में इधर-उधर होती रहती। माँ चली गई थी हमेशा के लिए - दो महीने पहले- एक हार्ट अटैक से। घर सूना हो गया पापा की 'सुनती हो, सुनती हो,' को सुनने वाली चली गई थी। अब अपना काम वे खुद ही करते हैं। पापा आज माँ की

तरह एक-एक चीज याद दिला रहे हैं- ये पैक किया..... वो रख लिया ....., क्योंकि आज दिवाकर आने वाले हैं उसे लेने के लिए।

टैक्सी आ चुकी थी। विदा का समय आया तो पापा अपनी नातिन को खुद से चिपकाए उसे दुलार रहे थे। मालती को माँ याद आ गई। बाहर बादल फिर घिर रहे थे, वह भरे गले से बोली- 'पापा अपना ध्यान रखना'। पापा ने उसके साथ-साथ दिवाकर को भी गले से लगा लिया था।

टैक्सी जा चुकी थी। वे कुछ देर जाती हुई टैक्सी को देखते रहे फिर बालकनी में कुर्सी डाल बैठे ही थे कि बूंदें बरसने लगीं। उनकी आँखों से बरसती बूंदें और मौसम की बरसती बूंदें एकाकार हो चुकी थीं। वे कुर्सी को उठाकर भीतर चल दिए।

3. अब बस...

'मुझसे अब सहा नहीं जाता प्रिया। नौकरी छोडनी ही पड़ेगी।'- प्रज्ञा ने आते ही झल्लाकर कहा था।

'अब क्या हो गया?' - प्रिया ने चौंक कर पूछा।

''बस वही रोज का हाल..... पंकज का बार बार नाराज हो जाना, उसके ताने....। ऑफिस से थक हार कर घर पहुँचो तो उसका मुंह सूजा ही रहता है। खुद तो ऑफिस से आकर पसर जाता है सोफे पर....मैं अगर थोड़ा आराम भी करना चाहूं तो सुनाने लगता है।''

''तो फिर छोड़ दे न जॉब और बैठ जा घर पर। कल को जब कोई आर्थिक तंगी आएगी तो खुद ही कहेगा कि घर पर महारानी कि तरह क्यों बैठी हो?

'वो नहीं कहेगा'- प्रज्ञा ने बड़े विश्वास से कहा।

क्यों? तुझे ऐसा क्यों लगता है?

'क्योंकि उसकी कंपनी में उसका फ्युचर बहुत ब्राइट है। मुझसे डबल सैलरी है उसकी... अगले महीने उसका प्रमोशन भी होने वाला है।'

'तो फिर महारानी की तरह पैर पसारकर बैठ और घर संभाल। तू भी खुश और पंकज भी'।

'पर ये नौकरी मुझे बहुत मेहनत के बाद मिली है प्रिया। इस नौकरी ने मुझे आत्मविश्वास दिया है पर पंकज के ताने भीतर तक हिला देते हैं।'- प्रज्ञा सहम कर बोली थी।

'ठीक है फिर सोच लो आराम से जल्दी में कोई निर्णय मत लेना।'

प्रज्ञा ने इस बातचीत के बाद एक चुप्पी साध ली थी। पूरे दिन भर दोनों के बीच इस बारे में कोई बात नहीं हुई।

प्रज्ञा चार दिन से ऑफिस नहीं आई थी। उसने एक मैसेज भेज दिया था कि वह बीमार है। प्रिया को भी उसने यही मैसेज भेजा था। आज पाँचवाँ दिन था, आज प्रज्ञा ने आने का मैसेज भेजा था पर 11 बजे तक भी वह ऑफिस नहीं पहुंची थी। अपनी तीन साल की नौकरी में वह कभी लेट

नहीं हुई थी। प्रिया उसका 10 बजे से इंतजार कर रही थी। 'कहीं उसने कोई फैसला तो नहीं ले लिया !!! पंकज के तानों के आगे कहीं हार तो नहीं गई।'–प्रिया ने निराशा से प्रज्ञा की खाली कुर्सी की तरफ देखा।

'हाय' – उसे अपने पीछे से प्रज्ञा की चहकती हुई आवाज सुनाई दी। 'हाय मैडम क्यों देर कर दी?

'आज मेट्रो लेट थी यार' – प्रज्ञा ने मासूम–सा जवाब दिया। 'ओ० के० मैंने समझा.....'

'तूने क्या समझा?.....

'कुछ नहीं'

प्रिया की 'कुछ नहीं' सुनकर प्रज्ञा एक फाइल में व्यस्त हो गई लेकिन प्रिया ने प्रज्ञा की सूजी हुई आँखें देख ली थी जिन्हें वह मोटे आइ लाइनर और काजल के बाद भी प्रिया से नहीं छुपा पाई थी।

4. उम्मीद

उसने पिछले दो महीने से मकान का किराया नहीं दिया था। बेटे की स्कूल फीस भी अगले महीने जानी थी। मकान मालिक रोज सुबह किराए के लिए फोन करता था पर वह कुछ न कुछ बहाना बना देता, लेकिन कब तक बहाने चलेंगे। अब उसने मकान मालिक के फोन उठाने ही बंद कर दिये थे। पत्नी को उसने घर खर्च के पैसे अपनी पिछली बचत से दिये थे, अगले महीने से वे भी नहीं होंगे जब नौकरी ही नहीं तो .....। उसकी कंपनी को बंद हुए 1 महीना हो गया था। सारे कर्मचारियों की छंटनी छह महीने से हो रही थी, दो महीने पहले उसे भी लैटर पकड़ा दिया गया था। वह रोज ही अखबार में नौकरी का विज्ञापन देख कर घर से निकल पड़ता पर शाम तक निराशा ही हाथ लगती। शाम को पत्नी किसी आशा से उसकी आँखों में झाँकती पर पति की आँखों में सूनापन देखकर कुछ कहने की हिम्मत ही न जुटा पाती। दिन भर की निराशा को वह अपने बेटे के साथ खेलने में भुलाना चाहता लेकिन जल्दी ही उकता जाता।

दूसरे दिन उठा ही था कि मकान मालिक आ गया। उसकी सांस फूलने लगी, कैसे उसका सामना करेगा? वह थोड़ी देर बेडरूम में ही बैठा रहा। पत्नी मकान–मालिक को सब बता चुकी थी। मकान मालिक अड़सठ वर्षीय बुजुर्ग थे, अपने जीवन की सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुके थे। उसे देखते ही बोले– 'कोई बात नहीं। सब ठीक हो जाएगा। मैं तो इधर से निकल रहा था सोचा मिलता चलूँ। मेरा फोन भी नहीं उठाते तुम आजकल।' कहकर वे चलते बने। वह हैरान था मकान–मालिक के इस व्यवहार पर। तैयार होकर नाश्ता कर मुस्कान लिए वह भी बैग उठाकर निकल पड़ा। उसके कानों में मकान–मालिक के शब्द गूंज रहे थे– 'सब ठीक हो जाएगा।'

डॉ. सारिका कालरा, सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ), हिन्दी विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

असली निबंध

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज

''जंगल में लकड़ी काटते वक्त सामने एक शेर आ गया। बस क्या था, ज्योंहि बापू पर पंजा मारना चाहा, उस पर दी कुल्हाड़ी, पंजा अलग। दूसरे पंजे को भी इसी प्रकार काट डाला। फिर तो मार कुल्हाड़ी, मार कुल्हाड़ी के जान ही निकाल दी । हाँ, उनका भी एक हाथ गायब हो गया था।'' शिक्षक और छात्र डर-भय की काँपती आँखों से उसे देख-सुन रहे थे। खुद को कुछ काबू में कर शिक्षक बोले, ''नाम क्या है तुम्हारे बापू का?''

''शाबाश बच्चो!'' मानव और मानव का धर्म विषय पर जो बतलाया, समझ कर सभी ने अच्छा लिखा। सभी छात्र खुशी से गद्‌गद हो गए। तभी एक लड़का अपनी जगह पर खड़ा हो गया।

मास्टर ने यह देख पूछा, ''प्रफुल्ल, तुम खड़े क्यों हो?''

लगभग रोता बोला प्रफुल्ल ''जी मैंने निबंध नहीं लिखा।''

''क्यों, क्यों नहीं लिखा?'' झल्ला पड़े मास्टर।

''जी समय नहीं मिला।''

''झूठ,बिल्कुल झूठ।''

मास्टरजी, पूरी ईमानदारी से कहता हूँ। आधी रात तक दादा जी के साथ जागते रहा था। वे दर्द से कराह रहे थे। माँ- बाबूजी कुछ ही देर तक उनके पास रहे फिर अपने कमरे में सोने चले गए।''

''फिर...,?''

''फिर मैं दादाजी के पास जाकर उनके हाथ-पैर दबाने लगा। जब तलवे रगड़ने लगा तो उन्हें नींद आ गई। तभी कहीं मैं सो पाया।''

''जब तुम्हारे माता-पिता ही सो गए थे तो तुम्हें क्या जरूरत थी जगने की?'' मास्टर की इस बात पर लगभग सभी छात्र एक दबी हँसी हँस पड़े थे। मास्टर ने उनकी तरफ एक छोटी

नजर तरेड़ी।

''जी, कल ही तो आपने यह सब बतलाया था। ऐसा करना मैंने अपना धर्म समझा।''

मास्टर आपादमस्तक झंकृत हो उठे। आँखें फटी रह गई। आत्मविभोर हो वहीं से बाँहें फैलाए प्रफुल्ल की ओर बढ़ चले, ''शाबाश बेटा, शाबाश! इतना तो मैंने भी नहीं सोचा था। अरे यही तो सच्चा और असली निबंध है।''

इतिहास

''शेर को किसने और कब पकड़ा था?''

''भरत राजा ने, जब वे बालक ही थे।'' शिक्षक के प्रश्न का बच्चों ने उत्तर दिया।

''सर! सर! मैं कुछ कहना चाहता हूँ?'' एक गरीब-सा बच्चा हाथ उठाए था।

''हाँ बोलो, क्या कहना चाहते हो?'' शिक्षक ने आज्ञा दी ।

''भरत ने तो पकड़ा ही, मेरे बापू ने तो मार भी डाला था। वह उस समय चौदह साल के ही थे।'' बच्चे की इस बात पर सभी तगड़े झटके में हिल गए थे।

''क्या कहना चाहते हो, स्पष्ट कहो?'' शिक्षक भी अवाक्ता दूर करना चाहते थे।

''आप सब का बहुत ऋणी रहूँगा भाई साहब .....। ''हाथ जोड़कर कृतज्ञता जताई उस रोगी ने। फिर आगे बोला, ''तो अब हमें चलना चाहिए ?''

''नहीं भाई साहब, डॉक्टर के अनुसार कल तक आपको यहाँ ठहरना होगा।'' एक दूसरा आदमी बोला।

''तो लीजिए इस नम्बर पर मेरे घर फोन कर दीजिए। लड़का तो नहीं, पर बहू घर पर होगी।'' जेब से एक नम्बर निकालकर दिया रोगी ने उस आदमी को। मुश्किल से 40-45 मिनट का रास्ता होगा अस्पताल से रोगी के घर का, पर लगभग 3 घंटे बाद उस घर की बूआ आई एक रिक्शा लेकर।

''जंगल में लकड़ी काटते वक्त सामने एक शेर आ गया। बस क्या था, ज्योंहि बापू पर पंजा मारना चाहा, उस पर दी कुल्हाड़ी, पंजा अलग। दूसरे पंजे को भी इसी प्रकार काट डाला। फिर तो मार कुल्हाड़ी, मार कुल्हाड़ी के जान ही निकाल दी । हाँ, उनका भी एक हाथ गायब हो गया था।'' शिक्षक और छात्र डर-भय की काँपती आँखों से उसे देख-सुन रहे थे। खुद को कुछ काबू में कर शिक्षक बोले, ''नाम क्या है तुम्हारे बापू का?''

''जी पहले गंगू था, अब कुछ लोग शेरमरवा तो कुछ लोग हथकट्टा कहते हैं।''

शिक्षक तो शून्य में डूब गए । पर, उनके सामने एक चुनौती खड़ी हो गई- 'सच है इतिहास में ये लोग क्यों नहीं आते...?'

खेती

''अरे वह आदमी गिरकर बेहोश हो क्या!''

''अरे हाँ...। देखो-देखो .....।'' यह भी दौड़ा, वह भी दौड़ा और अगल-बगल के लोग भी दौड़े। कुछ ने अपने-अपने तरीके से होश में लाने का प्रयत्न किया। पर असफल रहे। फिर दो आदमी आपस में सलाह लेकर एक गाड़ी से अस्पताल ले भागे।

''मैं कहाँ हूँ?''होश में आने के बाद बेहोश बोला।

जी भाई साहब, आप .....।''और पूरी कहानी बताई दो में से एक आदमी ने।

''आप सब का बहुत ऋणी रहूँगा भाई साहब .....।''हाथ जोड़कर कृतज्ञता जताई उस रोगी ने। फिर आगे बोला,''तो अब हमें चलना चाहिए ?''

''नहीं भाई साहब, डॉक्टर के अनुसार कल तक आपको यहाँ ठहरना होगा।'' एक दूसरा आदमी बोला।

''तो लीजिए इस नम्बर पर मेरे घर फोन कर दीजिए। लड़का तो नहीं, पर बहू घर पर होगी।'' जेब से एक नम्बर निकालकर दिया रोगी ने उस आदमी को। मुश्किल से 40-45 मिनट का रास्ता होगा अस्पताल से रोगी के घर का, पर लगभग 3 घंटे बाद उस घर की बूआ आई एक रिक्शा लेकर।

''चच्चा .....'' देखकर फफक पड़ी बूआ । लोगों ने समझा - यही पतोहू है।

''मत्त रो सुगिया। मैं एकदम से ठीक हूँ । पर बहू...?''

सुगिया बोली ''घर ही पर हैं। उन्हें तो रोज कुछ-न-कुछ होते ही रहता है।'' वे मुझसे बोली ''जल्द से काम निपटा लो सुगिया, अस्पताल जाना होगा।''

इन शब्दों ने बूढ़े की आँखों से झर-झर आँसू बहवा दिए। ओठ फरकने लगे।

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज, शेखपुरा, खजूरी, नौबतपुर, पटना–801109
मो. : 9334884520

माँ की छवि

डॉ. करूणा कमल

किशोरी धीरे-धीरे भारी मन से कक्षा में प्रवेश कर एक कोने में दुबक के बैठ गई। उसके हाथ-पैर ठंडे पड़ रहे थे और उसका मन बैठा जा रहा था। आज नवीं कक्षा के परीक्षा फल की घोषणा का दिन था। कक्षा में छात्रों का तांता लगा हुआ था। कुछ छात्र बहुत उत्साहित थे। शिक्षिका के निर्देशानुसार सभी छात्र अपने नम्बर के अनुरूप अपना रिपोर्ट कार्ड लेने अपने अभिभावकों के साथ क्रम से आ रहे थे। कक्षा में भीड़ छंटने लगी थी। तभी शिक्षिका ने फिर आवाज दी, 'नम्बर सात....।'

'किशोरी' अपनी अभिभाविका के साथ शिक्षिका के सामने आकर अपराधिनी की भांति सिर झुकाए खड़ी हो गई।

'किशोरी सीधी-सादी लड़की है, किन्तु मैं महसूस कर रही हूं कि वह कक्षा में ध्यान नहीं दे पाती। अपना बाल खुजलाते रहती है, जैसे इसके बालों में जूं हो। शायद इसकी देखभाल ठीक से नहीं हो पा रही है। कृप्या आप ध्यान दीजिए।' शिक्षिका ने अभिभाविका की ओर देखते हुए कहा।

'जी, मैम.....वास्तव में यह मेरे पास कभी-कभी आती है।' चौंकते हुए अभिभाविका ने जबाब दिया।

'किशोरी आपकी बेटी है? शिक्षिका ने अभिभाविका को घूरते हुए पूछा।

'मैम मैं इसकी मामी हूं। दरअसल इसकी मां नहीं है न इसीलिए....यह....' कहते- कहते किशोरी की मामी का गला भर आया।

सभी छात्र अपने-अपने परीक्षा परिणाम लेकर चले गए। शिक्षिका के सामने किशोरी का उदास चेहरा घूम रहा था। अरे...तभी इस बच्ची के परिणाम अच्छे नहीं आते। वह सदैव शून्य में खोई रहती है। शिक्षिका मन ही मन बुदबुदा रही थी। भला मां की ममता के बिना भी कोई जीवन है?

'मैम....मैं....' किसी ने अपने भर्राए स्वर से शिक्षिका के ध्यान को भंग किया, वह 'किशोरी' ही थी। वह कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसके लिए कह पाना मुश्किल हो रहा था। उसकी आंखें भींगी थी और मौन होकर भी बहुत कुछ बोल रही थी।

शिक्षिका ने स्नेहपूर्ण स्पर्श करते हुए कहा, 'बेटा, मैं कुछ-कुछ तुम्हारी परेशानी समझ रही हूं, उदास होने से जिंदगी नहीं चलेगी। जीवन में आगे तो बढ़ना ही पड़ेगा और....पढ़ाई तो करनी ही है। तुंम्हारी मां जहां कहीं भी है, वह तुम्हें देख रही हैं। इस तरह दुखी होकर तो तुम कुछ कर ही नहीं पाओगी। क्या तुम अपनी मम्मी को दुखी करना चाहती हो?'

'जी...जी नहीं....मैम' उसने सिर नीचे किए ही संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

शिक्षिका ने बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरी। उसके सिर को उपर उठाते हुए फिर कहा, 'तो क्या तुम मां की उम्मीदों पर खरे नहीं उतरना चाहती? उनके सपने को पूरा कर उन्हें खुश नहीं करना चाहती?.....'

'हूंमम..... 'उसने मुस्कुराने की कोशिश करते हुए कहा। 'तो फिर दृढ़ हो जाओ और जी तोड़ मेहनत करो, सफलता तुमसे कोई छीन नहीं सकता।' शिक्षिका ने उसका मनोबल बढ़ाते हुए कहा।

इतना सुनते ही किशोरी आगे बढ़कर शिक्षिका के गले से लग गई और फूट-फूटकर रोने लगी। उसके मुंह से अस्फुट सा स्वर गूंजा....मैं...म...म ध्वनि में मैम से अधिक मां का स्वर था शायद।

शिक्षिका की मृदुवाणी ने किशोर मन के अंतस्तल को स्पर्श किया। उसके चेहरे पर मीठी मुस्कान खिलने लगी। क्रमशः उसके परीक्षा परिणाम भी सुधारने लगे। शायद उसे शिक्षिका में मां की छवि दिखने लगी थी।

डॉ. करूणा कमल

माँ

रामबाबू नीरव

आधी रात को वह बुरी तरह से चौंक पड़ी। उसका कामी देवर उसे अपनी आगोश में भींच कर पागलों की तरह चूमे जा रहा था। शराब की दुर्गंधा से सुनंदा का सर फटने लगा और वह उस शराबी की आगोंश में छट-पटाती हुई अपनी आबरू बचाने को पुरजोर चेष्टा करने लगी। मगर वह जितना ही उस पतित इंसान की जकड़ से स्वयं को मुक्त करने की चेष्टा करती उसकी पकड़ और भी मजबूत होती चली जाती। अचानक वह जोर-जोर से चीखने और चिल्लाने लगी।

वह काफी सुबसूरत थी। सभी उसे कहते-''स्वर्गलोक की अप्सरा हो तुम''। अपनी तारीफ सुनकर वह फुली न समाती। उसकी शादी हुई। उसकी आशा के विपरीत उसकी सासु-माँ कर्कशा मिल गई। डोली से उतरते ही उसका स्वागत गालियों से हुआ। पति भी मिला तो एकदम से भोला-भाला और अपनी माँ का पूरा आज्ञाकारी। उसने प्रथम रात में ही अपना माथा पीट लिया। उसकी कर्कशा सास गालियों से उसके सात पुश्तों को ताड़ती रहती और वह भींगी बिल्ली बनी रहती। उसका पति जितना भी दब्बू था, उसका देवर उतना ही दबंग। दबंग भी ऐसा कि उसकी दबंगता के सामने उसकी माँ भी सहमी-सहमी सी रहती। वह हर-तरह के कुकर्मों से भरा था। शराबी, जुआरी और परस्त्री-गामी। उस बद्मिजाज लड़के को रोकनेवाला, डपटने वाला कोई भी न था। बाप के मर जाने पर उसकी माँ ने ही उसे लाड़-प्यार से बिगाड़ दिया था और बड़े भाई में इतनी हिम्मत ही न थी कि उसे डाँट-डपट पाता। वह अपनी भाभी को ललचायी हुई नजरों से देखा करता। भोली-भाली सुनंदा उसके मन में छुपे हुए पाप को समझ नहीं पाती। वह एक अभिशप्त स्त्री की भाँति इन दोनों माँ-बेटे का अत्याचार सहने को विवश थी।

बेचारी सुनंदा को पता ही न था कि उसका दुष्ट देवर उसकी सुन्दरता पर दिलोजान से फिदा हो चुका है। वह चुपचाप उसे अपनी हवश का शिकार बनाने का जला बुनता जा रहा

था और सुनंदा अपनी बदकिस्मती पर आँसू बहाये जा रही थी। एकदिन अचानक उसका पति अपने व्यापार के काम में दिल्ली चला गया। घर में वह और उसकी सासु माँ ही थी। इस एकांत को देखकर सुनंदा के देवर के मन में लड्डू फूटने लगे। आज उसकी भगवान से मांगी हुई मुराद पूरी हो जाएगी।

उस रात उसकी सासु माँ ने जी भकर उसे कोसा था। खूब लड़ी थी उससे। उसके पिताजी, माँ और उसके सात खानदान को गालियों से ताड़ दी थी। वह अपने कमरे में पड़ी हुई अपनी फूटी किस्मत पर आँसू बहाए जा रही थी। भूखे पेट रोते-रोते वह कब सो गयी उसे स्वयं पता न चला।

आधी रात को वह बुरी तरह से चौंक पड़ी। उसका कामी देवर उसे अपनी आगोश में भींच कर पागलों की तरह चूमे जा रहा था। शराब की दुर्गंधा से सुनंदा का सर फटने लगा और वह उस शराबी की आगोंश में छट-पटाती हुई अपनी आबरू बचाने को पुरजोर चेष्टा करने लगी। मगर वह जितना ही उस पतित इंसान की जकड़ से स्वयं को मुक्त करने की चेष्टा करती उसकी पकड़ और भी मजबूत होती चली जाती। अचानक वह जोर-जोर से चीखने और चिल्लाने लगी।

''माँ.....माँ.....मुझे इस कुत्ते से बचाओ।'' प्रगाढ़ नींद में सोयी सावित्री देवी के कानों में यह करूण चीत्कार पड़ी। वह एकदम से घबराकर उठ गयी। चीत्कार उसकी बहू की थी। उसकी छठी इंद्रीय जाग्रत हो गयी और माजरा समझते उसे देर न लगी। उसके घर में लाइसेंसी बन्दूक थी। उसने फौरन बंदूक उठा लिया और सुनंदा के कमरे की ओर दौड़ पड़ी। उसका दुष्कर्मी बेटा उसकी ''गृह-लक्षमी'' की पवित्रता को भंग करने का महापाप करने ही जा रहा था कि बंदूक से निकली गोली ने उसके माथे को चिथड़े में बदल दिया। सुनंदा उठ कर खड़ी हो गयी और फटी-फटी आँखों से अपनी कर्कशा सास की ओर देखने लगी जो उस समय साक्षात् माँ दुर्गा लग रही थी। कुछ पल वह विमूढ़ सी खड़ी रही, फिर पछाड़ खाकर सावित्री देवी के कदमों में गिर पड़ी-

''माँ.....।'' उसके मुँह से आर्तनाद निकला।

''चल उठ बेटी.....वह माँ.....माँ नहीं हो सकती, जो अपनी बेटी की इज्जत न बचा सके। चाहे वह अपनी सगी माँ हो या फिर सासु माँ ही क्यों न हो?''

रामबाबू नीरव, शारदा निकेतन, जैतपुर, पुपरी, पो. : जनकपुर रोड,
जिला : सीतामढ़ी (बिहार)–843320, मो. : 9801779842

रक्षक

रामबाबू नीरव

वे चारों उसे ललचायी हुई नजरों से घूरने लगे। उनके मुँह से लार भी टपकने लगा था। वे चारों उसकी ओर बढ़ने लगे। खौफ से काँपती हुई वह पीछे की ओर हटने लगी। वे चारों बहशी दरिंदे नजर आने लगे। एकाएक वह पलट कर सुनसान सड़क पर भागने लगी। वे चारों भी उसके पीछे दौड़ पड़े। दौड़ते-दौड़ते वह थक गयी। हठात् उसकी नजर सामने रोशन हो रहे एक अहाते में पड़ी। अनजाने ही वह पुलिस थाने पर पहुँच चुकी थी। उसने राहत की साँस ली। उसका साहस पुनः लौट आया और वह बेखौफ थाना के अन्दर घुस गयी। वे चारों शोहदे हाथ मलते हुए वापस लौटने लगे।

दो समुदाय के बीच खट-पट हो गयी थी। शहर में कर्फ्यू तो नहीं लगा था, मगर माहौल कर्फ्यू जैसा ही था। सड़के सून-सान थी और पूरा शहर वीरान। मौत के जैसा सन्नाटा पसरा था चारों ओर। उसकी सहेली जरीना की शादी थी। वह यानी सारिका और उसकी सहेली जरीना दो जिस्म एक जान थी। चाहे जैसे भी हो सारिका को अपनी सहेली की शादी में पहुँचना बहुत जरूरी था। वह जीवट वाली थी। दुस्साहसी थी। गर्म माहौल रहने के बावजूद भी वह निकल पड़ी नितांत अकेली ही। घरवालों ने बहुत समझाया-जरीना और उसके परिवार वाले मुस्लिम हैं, दूसरे सम्प्रदाय के है। वहाँ तुम्हारे साथ कुछ भी हो सकता है, मत जाओ''। मगर वह नहीं मानी। झगड़ पड़ी अपने परिजनों से। उसके पिता और बड़े भाई नाराज हो गये। झल्ला कर बोल पड़े-'' जाओ मर जाओ''।

''ठीक है मर जाउँगी.....।'' तैश में आकर वह भी बोल पड़ी।

शाम के धुँधलके को काली भयानक रात ने अपने आलिंगन में समेट लिया। बिजली भी गुल हो चुकी थी। कभी-कभी आवारा कुत्तों के रोने और भौंकने की आवाजें दिल को दहला दे रही थी। अचानक एक नुक्कड़ पर आकर वह ठिठक गयी। उसके कदम थम गये और वह पीछे की ओर पलट गयी। उसके सामने चार शोहदे खड़े थे। उन चारों के गले में 'राम-नामी' चादर लिपटी थी। यानी वे चारों

किसी अखाड़ा के सम्मानित सदस्य थे। वे चारों उसे ललचायी हुई नजरों से घूरने लगे। उनके मुँह से लार भी टपकने लगा था। वे चारों उसकी ओर बढ़ने लगे। खौफ से काँपती हुइ वह पीछे की ओर हटने लगी। वे चारों बहशी दरिंदे नजर आने लगे। एकाएक वह पलट कर सुनसान सड़क पर भागने लगी। वे चारों भी उसके पीछे दौड़ पड़े। दौड़ते-दौड़ते वह थक गयी। हठात् उसकी नजर सामने रोशन हो रहे एक अहाते में पड़ी। अनजाने ही वह पुलिस थाने पहुँच चुकी थी। उसने राहत की साँस ली। उसका साहस पुनः लौट आया और वह बेखौफ थाना के अन्दर घुस गयी। वे चारों शोहदे हाथ मलते हुए वापस लौटने लगे।

अचानक रात के सन्नाटे को चीरती हुई उसकी चीखें गूंज उठी- ''बचाओ...बचाओ...।'' उन चारों शोहदों के कानों में उसकी चीखें पड़ी। वे चारों अट्टहास करने लगे। उनमें से एक के मुँह से निकल पड़ा- ''साली हमसे बचकर रक्षक के पास गयी थी। उन रक्षकों ने ही उसका भक्षण कर लिया। आ....हा....हा....हा.....।''

एहसान फरामोश

''सर.....।''

''हाँ, बोलो क्या है?''

''मेरा नाम अविनाश है, चुनाव के समय आपको जीताने के लिए मैंने अपना खूब-पसीना बहा दिया था। आपके विरोधियों ने मेरे साथ मार-पीट भी की थी। उस मार-पीट में मेरा सिर फूट गया था सर। कई दिनों तक मैं अस्पताल में भर्ती रहा और मेरे माता-पिता का रोते-रोते बुरा हाल हो गया था।'' उस युवक की बकवास सुनकर विधायक जी झल्ला पड़े- ''देखो चुनाव में ये सब चलता ही रहता है। तत्काल तुम्हें उसका मुआवजा भी दे दिया गया होगा मैं किसी का एहसान अपने ऊपर नहीं रखता। अब मेरा माथा चाटने क्यों चले आए?''

''नहीं सर, मैंने एक पैसा भी नहीं लिया आपसे। मैं तो पार्टी के सिद्धांत पर चल रहा था। राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए आप जैसे राष्ट्रवादी नेता को जीताने की जी-तोड़ मेहनत की थी मैंने। मेरे इलाज में सारा खर्च मेरे पिताजी ने ही किया था सर।'' युवक के चेहरे पे मायूसी उभर आयी।

''तो फिर अब क्यों आ गये मेरे पास नाक रगड़ने?'' विधायक जी का गुस्सा धीरे-धीरे फूटने लगा।

''आप गलत मत समझिये सर, मैं आज भी अपनी पार्टी के सिद्धांत पर अटल हूँ। राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए अपना सर कटाने के लिए तैयार हूँ।''

''फिर मेरे पास आने का मतलब?''

''चुनाव के समय ही आपके विरोधियों ने मेरे ऊपर कई धाराएँ लगाकर केश कर दिया था सर। मुझे पकड़ने के लिए पुलिस दिन-रात मेरे घर पर छापामारी कर रही है। पुलिस के आतंक से मेरी रक्षा कीजिए सर।''

''ऐ क्यों पागलों जैसी बातें कर रहे हो? क्या मैंने कहा था मार-पीट करने को। अब जैसा किया तो खुद भुगतो, मैं क्यों तुम्हारे इस लफड़े में पड़ूँ?'' विधायक जी एकदम से शैतान नजर आने लगे।

''सर, यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने आपकी पार्टी के लिए ही तो....।''

''चुप....।'' इतनी जोर से चीखे विधायक जी कि उनके ए.सी. चेम्बर की दीवारें तक हिल गई।

''भागों यहाँ से वरना....।''

''वरना क्या? क्या करेंगे आप?'' अपनी पार्टी के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित उस कार्यकर्ता को भी गुस्सा आ गया, उसकी आँखें अंगार की तरह दहकने लगी। उसका दिल कसक उठा। ''वाह रे एहसान-फरामोश! चुनाव के समय जो बेटा-बेटा कहते नहीं थकता था, चुनाव जीत जाने के बाद यह आदमी सबकुछ भूल गया।'' वह मन ही मन सोचते हुए उबलने लगा।

''अरे कोई है.....?'' विधायक जी पुनः चीख पड़े- ''देखो मेरे चेम्बर में कोई पागल घुस आया हैं, फौरन निकाली इसे यहाँ से''

''क्या कहा, मैं पागल हूँ....?'' युवक का सर घूम गया। उसने टेबल पर पड़ा हुआ पेपरवेट उठा लिया और पूरी ताकत से विधायक जी के सर पर दे मारा। अब वह सचमुच पागल की तरह बाल नोंचते हुए चिल्लाए जा रहा था- ''मैं पागल नहीं हूँ कुत्ते, बल्कि एहसान-फरामोश तू है। जिस आदमी की खातिर अपना खून-पसीना बहाया, उसने एक ईमानदार कार्यकर्त्ता की वफादारी का ये सिला दिया?''

विधायक के सिर से खून की धारा बहने लगी और अंगरक्षकों की गिरफ्त में फंसा हुआ वह युवक पागल की तरह अट्टहास किए जा रहा था।

रामबाबू नीरव, शारदा निकेतन, जैतपुर, पुपरी, पो. : जनकपुर रोड,
जिला : सीतामढ़ी (बिहार)–843320, मो. : 9801779842

गारंटी

डॉ. रामनिवास 'मानव'

खाद्य-सुरक्षा कानून बन जाने की बात सुनकर होरी की घरवाली धनिया बड़ी प्रसन्न थी। पति का जन्मजात रूआंसा-सा चेहरा देखकर बोली- ''अब क्यूं मुँह लटकाये बैठे हो? सरकार ने, हम गरीबों के लिए, खाद्य-सुरक्षा कानून बना दिया है, यह तो बड़ी अच्छी बात है गोबर के बापू!''

''हूँ!'' कुछ उत्साह नहीं दिखाया था होरी ने।

''चलो, अब हमारे बच्चों की भूख और कुपोषण की समस्या तो खत्म हो जायेगी। दोनों वक्त भरपेट खाना मिलेगा, तो इनका गात भी कुछ भर जायेगा।''

''ज्यादा खुश न हो भाग्यवान!'' होरी के मन का डर बाहर आ गया था- ''जैसे मनरेगा से दलालों की जेबें भरी थी; वैसे ही, इस कानून से भी, विचौलियों की भूख मिटेगी।''

''फिर कानूनी गारंटी किस बात की?''

''गरीब के लिए तो सिर्फ भूख की गारंटी है, जो उसे पैदा होते ही, बिना किसी कानून के, स्वत: ही मिल जाती है।''

आग

मोहल्ले में आग लग गई थी। वह यह सोचकर निश्चिन्त था कि आग बहुत दूर है तथा उसका घर पूर्णतया सुरक्षित है।

आग कुछ नज़दीक आ गई, तो वह थोड़ा चिन्तित हुआ, लेकिन कुछ करने की आवश्यकता उसने अब भी नहीं समझी।

आग उसके पड़ोसी के घर तक आ गई, तब भी वह हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहा। 'पड़ोसी के लिए वह अपने हाथ क्यों झुलसाये!' मन-ही-मन वह सोचता है।

अब जलने की बारी उसके घर की थी। आग बुझाने के लिए वह कुछ कर पाता, इससे पूर्व ही आग, उसके घर को राख में बदलकर, अगले घर तक जा पहुंची थी।

डॉ. रामनिवास 'मानव', 571, सैक्टर–1, पार्ट–2, नारनौल–123001 (हरि0), मो. : 08053545632

✧ ✧ ✧

पानी की जाति

विष्णु प्रभाकर

बी. ए. की परीक्षा देने वह लाहौर गया था। उन दिनों स्वास्थ्य बहुत खराब था। सोचा, प्रसिद्ध डॉ. विश्वनाथ से मिलता चलूँ। कृष्णनगर से वे बहुत दूर रहे थे। सितम्बर का महीना था और मलेरिया उन दिनों यौवन पर था। वह भी उसके मोहचक्र में फँस गया। जिस दिन डॉ. विश्वनाथ से मिलना था, ज्वर काफी तेज था। स्वभाव के अनुसार वह पैदल ही चल पड़ा, लेकिन मार्ग में तबीयत इतनी बिगड़ी कि चलना दूभर हो गया। प्यास के कारण, प्राण कंठ को आने लगे। आस-पास देखा, मुसलमानों की बस्ती थी। कुछ दूर और चला, परन्तु अब आगे बढ़ने का अर्थ खतरनाक हो सकता था। साहस करके वह एक छोटी-सी दुकान में घुस गया। गांधी टोपी और धोती पहने हुए था।

दुकान के मुसलमान मालिक ने उसकी ओर देखा और तल्खी से पूछा- ''क्या बात है?''

जवाब देने से पहले वह बेंच पर लेट गया। बोला-- ''मुझे बुखार चढ़ा है। बड़े जोर की प्यास लग रही है। पानी या सोडा, जो कुछ भी हो, जल्दी लाओ।''

मुस्लिम युवक ने उसे तल्खी से जवाब दिया -- ''हम मुसलमान हैं।''

वह चिनचिनाकर बोल उठा -- ''तो मैं क्या करूँ?''

वह मुस्लिम युवक चौंका। बोल-- ''क्या तुम हिन्दू नहीं हो? हमारे हाथ का पानी पी सकोगे?''

उसने उत्तर दिया- ''हिन्दू के भाई, मेरी जान निकल रही है और तुम जात की बात करते हो। जो कुछ हो, लाओ।''

युवक ने फिर एक बार उसकी ओर देखा और अन्दर जाकर सोडे की एक बोतल ले आया। वह पागलों की तरह उस पर झपटा और पीने लगा।

लेकिन इससे पहले कि पूरी बोतल पी सकता, उसे उल्टी हो गई और छोटी-सी दुकान गन्दगी से भर गई, लेकिन उस युवक का बर्ताव अब एकदम बदल गया था। उसने उसका मुँह पोंछा, सहारा दिया और बोला-- ''कोई डर नहीं। अब तबीयत कुछ हल्की हो जाएगी। दो-चार मिनट इसी तरह लेटे रहो। मैं शिंकजी बना लाता हूँ।''

उसका मन शांत हो चुका था और वह सोच रहा था कि यह पानी, जो वह पी चुका है, क्या सचमुच मुसलमान पानी था?

विष्णु प्रभाकर

✧ ✧ ✧

लघुकथा संग्रह : तैरती हैं पत्तियाँय कथाकार : बलराम अग्रवालय प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, लेन नं०-1 ई, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
संस्करण : 2019; पृष्ठ संख्या : 160य मूल्य : रुपए 175/- (पेपरबैक)
समीक्षक : डॉ. पुरुषोत्तम दुबे,

तैरती हैं पत्तियाँ : संवादों की छैनी से तराशी लघुकथाएँ

डॉ. पुरूषोत्तम दुबे

साहित्यिक एक्टिविस्ट की बेजोड़ संज्ञा से जिन्हें नवाजा जा सकता है, ऐसे बलराम अग्रवाल लघुकथा रचना में बहुत दिनों से निष्ठापूर्वक संलग्न हैं। उनके संबंध में ऐसे विचार के प्रणेता श्री विश्वनाथ त्रिपाठी की इस बात से भी सहमत हुआ जा सकता है कि 'बलराम अग्रवाल जीवन को व्यापक दृष्टि से देखने वाले लघुकथाकार हैं।'

'तैरती हैं पत्तियाँ' पर कोई समीक्षात्मक मन्तव्य प्रसारित करने से पूर्व प्रस्तुत लघुकथा संग्रह पर स्वयं बलराम अग्रवाल द्वारा कहे गये विचार को समझ लेना जरूरी है। उनका कहना है कि- 'तैरती हैं पत्तियाँ' की सभी रचनाएँ हवा की हथेली या पानी के पल्लू पर उन्मुक्त भाव से तैरती जीवित रश्मियाँ और चिंगारियाँ हैं। ये पेड़ की ही नहीं, फूल की भी पत्तियाँ हैं और चाकू-छुरी का फाल कहलाने वाली लोहा-स्टील की भी। लोक की गोद में जाकर ये ही तो 'पाती' में भी तब्दील होती हैं; प्यार को किताब के पन्नों के बीच सूख चुके फूल-सी अमर कर जाती हैं।' बलराम अग्रवाल के यही सब विचार 'तैरती हैं पत्तियाँ' में संग्रहीत लघुकथाओं का ताना-बाना बुनते नजर आते हैं।

जीवन के दो छोर होते हैं- मुलायम और कठोर। लेकिन मुलायम भी ऐसा मुलायम जो भीतरी कठोरता पर पड़ा आवरण मात्र है। आधुनिक जीवन-शैली से जो खारिज हो चुका है, वह मुलायम। सूखी पत्तियों का मर्मर स्वर अब जीवन की आकुलता बन चुका है। ये स्वर अब स्वर नहीं, जीवन की चौखट पर पढ़े जाने वाले मर्सिया बन चुके हैं। लाज-शर्म के रंगीन परदे अब इतने स्याह हो चुके हैं कि शर्मोहया की चिंता जमाने में कहीं दिखायी नहीं पड़ती। 'मुर्दों के महारथी' लघुकथा में बलराम अग्रवाल ने एक संवाद पिरोया है- 'शऊर की फिक्र नहीं की, तो जनाब... मुर्दा समूचे शहर को खा जायेगा कब्र से निकलकर।'

सुई की नोंक से जैसे हथेली पर पक चुका छाला फोड़ दिया जाता है, बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं में छाले की पीव का रिसाव 'पाकिस्तान' शीर्षक लघुकथा में संवादों की गहमा-गहमी के मध्य से बह रहा होता है-

''पाकिस्तान किन्होंने माँगा था?''
''सियासतदारों ने।''
''वो मुसलमान नहीं थे?''
''थे, नहीं थे-मुझे क्या पता?''
''किसे पता है, फिर?''
''जिन्होंने दिया था, उन्हीं से पूछ लो।''

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के विभाजन की यही 'पीव' आज भी ज्यों की त्यों हैं।

लगता है, आधुनिक समय में आज का हर व्यक्ति अपना सलीब अपने ही काँधे पर ढोते हुए चल रहा है। आज हिंसा का पत्थर हर किसी के हाथ में है; कब, कहाँ सिर पर आ पड़े और काँच की देह चूर-चूर हो जाये। 'बकरा और बादाम' लघुकथा में बलराम अग्रवाल ने आधुनिक बोध से घिरे हालात से पस्त ऐसा ही एक संवाद गढ़ा है- अजीब ही रोग से घिर गया हूँ, सर। जिससे भी मिलता हूँ, ऐसा लगता है.... उसके सींग उग आये हैं; और मैं अगर आसपास बना रहा तो पता नहीं कब, उन्हें वह मेरे पेट में घुसेड़ देगा।''

संवादों के पहरावे से ही लघुकथा की सजधज बढ़ती है यानी लघुकथा में सक्रियता पैदा हो जाती है। कुरुक्षेत्र में संवादों की बानगी ने ही 'भगवद्गीता' को जन्म दिया है। संवाद कभी निष्प्राण नहीं होते हैं। संवादों की अनुशासित अभिव्यंजना में ही लघुकथा के 'प्राण' पुलकित हुए मिलते हैं। संवादों के पार्श्व से लघुकथा का कथ्य, परिवेश, घटना, चरित्र, भाषा आदि लघुकथा के सभी आवश्यक कारक झाँकते प्रतीत होते हैं। बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं में ज्यादातर संवादों का आगमन इसी मुहावरे को पकड़कर हुआ प्रतीत होता है। पूरा समाज मुखौटों से वासित हो चुका है। सबके चेहरे नकाब से ढके हैं। भेदाभेद का कोई सवाल ही नहीं। लेकिन जो आदमी को खँगालकर उसमें से मुखौटाविहीन इंसान निकाल दे, उसी की तलाश में बलराम अग्रवाल की अद्भुत संवादों से सुशोभित 'हरामखोर' लघुकथा इस अनूठे संदर्भ का दर्पण बनकर सामने आती है-

''यार, अपने उस दोस्त से मिलवा कभी...।''
''किस दोस्त से?''
''वही, जो बिना गालियाँ दिए तुझसे बात नहीं करता है।''

''क्या करोगे उस हरामखोर दोस्त से मिलकर!''

''मिन्नतें करूँगा भाई! एक दोस्त तो मुझे भी चाहिए ऐसा, जो जब भी मिले, बिना नकाब के मिले।''

संवादों के बूते लघुकथा गढ़ना बड़ा परिश्रम माँगता है। श्ब्दों की ढपली बजा-बजाकर ही संवाद नटी को कथ्य के महीन तार पर चलाना पड़ता है, तब कहीं जाकर संवादी लघुकथा का जन्म होता है। जहाँ सृजन है वहाँ पीड़ा है। यह वेदना लघुकथाकार को भुगतनी होती है, तब कहीं जाकर लघुकथा में वह 'महाकरुणा' पैदा होती है जिसका उत्स मानव जाति को एक सूत्र में पिरो देता है। अस्मिता अथवा वजूद को जगाने में ही एक बड़े संवाद की जरूरत है। परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ी औरत जाति को मुक्त बनाने में खुद औरत को देहरी लाँघकर मैदान में आना होगा वरना औरत विषयक आजादी का सवाल निरुत्तरित ही रहेगा। लघुकथा 'सुनो बेटियो' में ऐसा ही अलार्म समय की घड़ी में बलराम अग्रवाल ने लगाया है।

''चुप न बैठो मेरी बेटियो, ऊपर वाली उस आवाज को सुनो जो 'औरत' की 'औरत' के लिए हो। गुलामी से तुम तभी बाहर आ पाओगी, जब 'औरत' की आवाज सुनने और लिखने लायक खुद को बना लोगी।''

'तैरती हैं पत्तियाँ' संग्रह की अधिकांश लघुकथाएँ संवादों के बूते रची गयी हैं। ये लघुकथाएँ बलराम अग्रवाल को प्रयोगधर्मी लघुकथाकार सिद्ध करती हैं। इस संग्रह में उनकी लघुकथाएँ संवादात्मक और विचारपरक होने के बावजूद लघुकथा विधा की देहरी पर मुस्तैदी से खड़ी प्रतीत होती हैं।

बलराम अग्रवाल 'लघुकथा आश्रम' को जो भी देते हैं या दे रहे हैं, वह दान है, कर्ज नहीं। उनका यह साहित्यिक इन्वेस्टमेंट है, भौतिक नहीं। संवादात्मक लघुकथा गढ़ने में हिम्मत और समर्पण चाहिए जो बलराम अग्रवाल के व्यक्तित्व और दृतित्व में स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है।

बलराम अग्रवाल का लघुकथा संग्रह 'तैरती हैं पत्तियाँ' गुलाब के नन्हें; नन्हें अनेक गुलदस्तों की मानिंद हैं। उन्होंने अपनी लघुकथाओं के गुलदस्ते को एक-एक खिली-अधखिली कली को उसकी लम्बी टहनी से जटिलता के काँटे तराशकर हरी पत्तियों समेत पारदर्शी पन्नी में शंक्वाकार रूप दिया है जो देखने में संवादात्मक होकर इसके बरअक्स पढ़ने में विचारात्मक हैं।

डॉ. पुरूषोत्तम दुबे, शशीपुष्प, 74 जे/ए, स्कीम नं० 71, इन्दौर–452009
मोबाइल : 9329581414

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह का साहित्यिक अवदान

अमित कुमार मिश्र

1974 ई. से 1979 ई. के मध्य उन्होंने 'पुस्तकालय' नामक मासिक पत्रिका का कुशल संपादन भी किया। डॉ. सिंह पटना के प्रसिद्ध पुस्तकालय, सिन्हा लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर सुशोभित रहे। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अपने कार्य के अलावे साहित्य सेवा का जो मार्ग खोज निकाला वह विरल ही देखने को मिलता है। मसलन उन्होंने देखा कि पुस्तकालय में आने वाले शोधकर्त्ताओं को या अन्यत्र भी शोधार्थियों, विद्वानों को किसी उपन्यास (उदाहरणार्थ, 'अपने अपने अजनबी' -अज्ञेय) पर लिखे गए समालोचना ग्रंथों की तलाश है।

साहित्य सतत विकास पथ पर चलते रहने वाली एक प्रक्रिया है। किसी भी जीवित भाषा का साहित्य निरंतर गतिमान होता है। साहित्य के विकास में अनेक साहित्यकारों का श्रम रेखांकन योग्य पाया जाता है। बहुधा अनेक रचनाकारों ने तो अपना संपूर्ण जीवन ही साहित्य की श्रीवृद्धि में अर्पण कर दिया। डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह एक ऐसे ही व्यक्तित्व रहे हैं जिनका संपूर्ण जीवन साहित्य सेवा को समर्पित रहा। हिंदी जगत में उन्हें साहित्य के सच्चे सेवक और एक महान पुस्तकालय विज्ञानवेत्ता के रूप में स्मरण किया जाता है। ध्यातव्य है कि साहित्य सेवा का दायित्व कई रूपों में निर्वाहित किया जाता है। गद्य-पद्य विधाओं में लेखन के अलावे भी साहित्य साधना के विभिन्न आयाम हैं। यथा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य के स्वरूप निर्धारण में योगदान, कामता प्रसाद गुरु का हिंदी भाषा को व्याकरण सम्मत रूप प्रदान करना इत्यादि।

डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह के साहित्यिक सेवा का स्वरूप सर्वाधिक मुखरित हुआ है साहित्यिक विधाओं यथा, उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य आदि के समालोचना संदर्भ के प्रणयन में।

राम शोभित प्रसाद सिंह प्रणीत ग्रंथों में 'पुस्तकालय संगठन एवं प्रशासन', 'उपन्यास समालोचना संदर्भ', 'नाटक समालोचना संदर्भ', 'कहानी समालोचना संदर्भ', 'काव्य समालोचना संदर्भ', 'हिंदी

उपन्यास : प्रेमचंदोत्तर काल', 'पुस्तकालय विज्ञान की रूपरेखा', 'कहानी कोश', 'काव्य कोश' आदि हिंदी साहित्य के अक्षय कोश को सुसज्जित करते हैं। इसके अलावा भी हिंदी एवं अंग्रेजी में उनके कई आलेख एवं शोध पत्र, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। 1974 ई. से 1979 ई. के मध्य उन्होंने 'पुस्तकालय' नामक मासिक पत्रिका का कुशल संपादन भी किया। डॉ. सिंह पटना के प्रसिद्ध पुस्तकालय, सिन्हा लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर सुशोभित रहे। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अपने कार्य के अलावे साहित्य सेवा का जो मार्ग खोज निकाला वह विरल ही देखने को मिलता है। मसलन उन्होंने देखा कि पुस्तकालय में आने वाले शोधकर्त्ताओं को या अन्यत्र भी शोधार्थियों, विद्वानों को किसी उपन्यास (उदाहरणार्थ, 'अपने अपने अजनबी' -अज्ञेय) पर लिखे गए समालोचना ग्रंथों की तलाश है ऐसे में वह व्यक्ति बहुत समय खर्च करने पर किसी एक-दो पुस्तक का पता लगा पाता है। वहीं डॉ. सिंह ने इस समस्या के समाधानार्थ 'उपन्यास समालोचना संदर्भ' का प्रनयन किया जिसके सहारे उपयोगकर्ता उक्त या किसी भी उपन्यास पर लिखे गए सभी समालोचनात्मक पुस्तकों की जानकारी प्राप्त कर लेता है। वहीं उस पुस्तक से संबंधित संक्षिप्त विवरण भी प्राप्त हो जाता है। यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रंथ के प्रणयन से साहित्य का कितना बड़ा हित साध्य होता है। विश्लेषणात्मक संदर्भ सूची की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए 'डॉ. नवल किशोर गौड़' ने लिखा है, विशिष्टीकरण के इस युग में साहित्य की इतनी विशिष्ट विधाएं हमारे सामने आ गई हैं कि किसी एक साहित्यिक विधा के संबंध में समस्त आलोचनात्मक साहित्य की विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक संदर्भ सूची के अभाव में हम उस विशेष साहित्यिक विधा के संबंध में उपलब्ध सारी आलोचनात्मक सामग्रियों का आकलन करने में सर्वथा असमर्थ रह जाते हैं।''1

डॉ. गौड़ के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि इस तरह के संदर्भ-ग्रंथ किसी भी साहित्य के लिए कितना उपयोगी और अनिवार्य है। और उस समय तो इन पुस्तकों की महत्ता कई गुना बढ़ जाती है जबकि इसके पूर्व उसका सर्वथा अभाव रहा हो। 'उपन्यास समालोचना संदर्भ' के विषय में डॉ. गौड़ की यह उक्ति रेखांकन योग्य है, बिहार के राज्य केंद्रीय पुस्तकालय (सिन्हा लाइब्रेरी) के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान रामशोभित प्रसाद सिंह की पुस्तक अपने क्षेत्र में पहला प्रमाणिक ग्रंथ है।''2

इसी तरह की उपयोगी अन्य पुस्तकों में अगला नाम आता है 'कहानी समालोचना संदर्भ' का इस पुस्तक में डॉ. सिंह ने हिंदी कहानियों की समालोचना प्रस्तुत करने वाले आलोचना-ग्रंथों के साथ-साथ पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानी संबंधी लेखों की सूची भी शामिल की है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. शोभाकांत मिश्र ने लिखा है, वर्णानुक्रम से कहानी समालोचना ग्रंथों की यह सूची कहानी साहित्य पर शोध करने वाले शोधकों तथा कहानी साहित्य के समीक्षकों का श्रमभार हल्का करेगा।''3

नि:संदेह यह ग्रंथ शोधार्थियों एवं समीक्षकों का श्रमभार अवश्य हल्का करेगा किंतु ग्रंथकार के लिए यह कार्य कितना दुष्कर रहा होगा यह विचारने योग्य है। कहानी समालोचना से संबंधी पुस्तकों को तलाशना साथ ही संबंधित पत्र-पत्रिकाओं की सूची तैयार करना कितना कठिन कार्य है। निश्चित तौर पर उन्होंने अपने जीवन का एक-एक लम्हा इस श्रम में झोंक दिया होगा।

उपन्यास समालोचना संदर्भ और कहानी समालोचना संदर्भ की भांति ही डॉ. सिंह ने 'नाटक समालोचना संदर्भ' और 'काव्य समालोचना संदर्भ' का प्रणयन भी किया है। नाटक समालोचना संदर्भ में लेखक ने हिंदी नाटक पर आधारित तीन सौ से अधिक आलोचना ग्रंथों की सूची संपूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत की है। इस समालोचना संदर्भ की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए 'प्रोफेसर मटुकनाथ चौधरी' ने लिखा है, इसमें हिंदी साहित्य में प्रकाशित नाटकों से संबंधित समस्त आलोचनाओं एवं शोध प्रबंधों की प्रमाणिक परिचयात्मक सूचनाएं दी गई हैं। इसके लिए वैज्ञानिक पद्धति अपनाई गई है।''4

'काव्य समालोचना संदर्भ' के दो खंडों में लगभग सत्रह सौ पुस्तकों का विवरण है जो काव्य से संबंधित हिंदी में लिखित समालोचना ग्रंथों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस ग्रंथ की सहायता से काव्य समालोचना से संबंधित पुस्तकों को तलाशना वैसा ही है जैसे शब्दकोश से शब्दों को तलाशने का कार्य। इस तरह के काम हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने के साथ उसे वैज्ञानिकता दिलाने में भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'काव्य समालोचना संदर्भ' के संबंध में डॉ. हरदयाल ने लिखा है, काव्य समालोचना संदर्भ से अनुसंधानकर्ताओं, अध्यापकों एवं कवियों को हिंदी काव्य की विशेष प्रवृत्ति, विशेष काल या विशेष कवि या काव्य से संबंधित आलोचनात्मक पुस्तकों की सूचना एक साथ, इस स्थान पर मिल जाएगी।''5

रामशोभित प्रसाद सिंह उन साहित्य-सेवियों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य में एक बड़ी कमी को पूरा करने का कार्य किया। पुस्तकालय और साहित्य के अन्योन्याश्रित संबंध को प्रमाणित करने में डॉ. सिंह की महती भूमिका है। उक्त ग्रंथों के अलावे डॉ. सिंह की 'हिंदी उपन्यास : प्रेमचंदोत्तर काल' नामक हिंदी उपन्यास की आलोचनात्मक पुस्तक भी काफी चर्चित रही है। यह आलेख डॉ. सिंह के साहित्यिक अवदानों का एक संक्षिप्त परिचय मात्र उपस्थित करने में सक्षम है। उनकी साहित्य-साधना एवं उनका व्यक्तित्व खुद में इतना विराट है कि उसे एक आलेख तो क्या पुस्तक में भी समेट पाना संभव नहीं है। उन की साहित्य साधना से हिंदी साहित्य को कितना लाभ हुआ है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने चार विधाओं से संबंधित समालोचना संदर्भों का सृजन किया है और साहित्य में समालोचना संदर्भ की महत्ता बतलाते हुए प्रोफेसर मटुकनाथ चौधरी ने लिखा है, सच तो यह है कि किसी भाषा की साहित्यिक समृद्धि की अन्यतम मानदंड उस में प्रकाशित विविध संदर्भ ग्रंथ हैं।''6

संदर्भ :

1. पुस्तकालय विज्ञानवेत्ता एवं साहित्य साधक : डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह संपादक डॉ. शिवनारायण पृ.- 151, 2. वहीं पृ.- 151, 3. वहीं पृ. -156, 4. वहीं पृ. -158, 5 वहीं पृ. -160, 6. वहीं पृ. -159

अतिथि व्याख्याता हिंदी, हरिहर साह महाविद्यालय, उदाकिशुनगंज, मधेपुरा
संपर्क– 9304302308, ईमेल– amitraju532@gmail.com

भोपाल में आयोजित रवीन्द्र नाथ टैगोर कला और साहित्य महोत्सव 2019 में प्रसिद्ध लेखिका चित्रा मुद्गल, रंगकर्मी उषा गांगुली, ताशकंद से आए प्रोफेसर शिराजुद्दीन, श्रीलंका से आए प्रोफेसर उप्पुल, देवेन्द्र चौबे और अन्य लेखकगण।

पी.आई. बी. एवं आर.ओ.बी. के संयुक्त तत्वावधान में हिंदी पखवाड़ा के समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में सम्बोधित करते हुए साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र

दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के केन्द्रीय पुस्तकालय द्वारा दिनांक 15-11-2019 को बाल दिवस के उपलक्ष्य में ''स्वच्छता अभियान'' के अंतर्गत 'प्लास्टिक हटाओ, स्वच्छता बढाओ, स्वास्थ्य बचाओ' विषय पर नई दिल्ली रेलवे स्टेशन में नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति कल्याणम ग्रुप द्वारा की गयी ।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

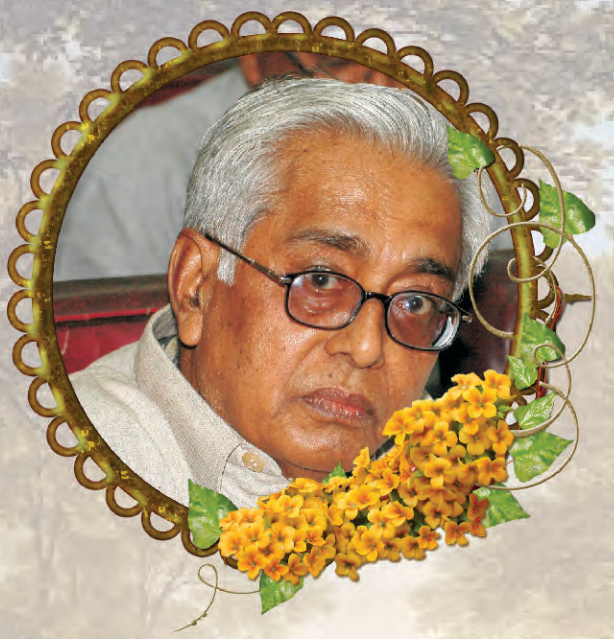

डॉ. राम शोभित प्रसाद सिंह

(10 जनवरी 1935 – 10 अक्टूबर 2019)

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान एवं यशस्वी पुस्तकालय विज्ञानी डा. राम शोभित प्रसाद सिंह जी का विगत् 10 अक्टूबर 2019 को देहावसान हो गया। वे 84 वर्ष के थे। वे बिहार में पुस्तकालय आंदोलन के प्रणेता थे। देश के विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में हिंदी तथा अंग्रेजी में साहित्यिक तथा पुस्तकालय विज्ञान के सम्बन्ध में उनके अनेक निबंध प्रकाशित हो चुके थे। उन्होंने लगभग दो दर्जन महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की थी। आरंभ से ही वे 'साहित्य यात्रा' के सलाहकार थे। साहित्य यात्रा को आज जो लोकप्रियता मिली है उसमें उनका योगदान स्तुत्य है। डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह जी के जाने से बिहार के साहित्य जगत में महाशून्य की स्थिति बन गयी है। विशेष रूप से 'साहित्य यात्रा' परिवार मर्माहत है।

हम उनके यशःकाय को नमन करते हैं तथा उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685